

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८३

प्रति १०००

दूसरा संस्करण वीर नि० सं० २४८६

प्रति १०००

तीसरा संस्करण वीर नि० सं० २४८८

प्रति ११००

चतुर्थांश वीर नि० सं० २४९०

प्रति २२००

इस ग्रन्थ में अंग्रेजों के कर्मों में सीमा २१

१०×२० २८ पौंड का संग्रह है।

द्वितीय भाग मुख्य ६० न. पै

मुद्रक—

मूलचन्द्र खैन

श्री खैन जाट प्रिन्टर्स,

नया बाजार, बम्बे।

# प्रस्तावना

इस पुस्तकमें मुख्य उपयोगी प्रश्न और उनके अनुशीलन में जो जो नये उपयोगी प्रश्न उद्भूत हुए उन सबका उत्तर सहित समावेश किया गया है तथा उन प्रश्नोंका प्रकरणानुसार वर्ग बन्नाके मालारूप गूँथ कर "श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला" के नामसे आज मुमुक्षुओं के हाथ में देते हुए हर्ष हो रहा है ।

इस माला में प्राथमिक अभ्यासियों को—मुख्यतः तत्त्वके जिज्ञासुओंको अध्ययनके लिये जो जो विषय अत्युपयोगी हों वे सभी—द्रव्य—गुण—पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उत्पाद—व्यय—धौव्य, द्रव्य के सामान्य विशेष गुण, चार अभाव, यहाँ तक प्रश्नोत्तर तो प्रथम भाग में दिया गया है बाद इस दूसरे भाग में—पाँचवें प्रकरण में कर्ता-कर्मादि छह कारक, छठवें प्रकरण में उपादान-निमित्त तथा नि० नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, फिर सातवें प्रकरण में सात तत्त्व, तथा उसमें भूल, देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप, धर्म का स्वरूप वगैरह शास्त्राधार से लिया गया है ।

तीसरे भाग वाली पुस्तक के आठवें प्रकरण में लक्षण, प्रमाण, नव-निक्षेप, जैन शास्त्रों में पाँच प्रकार से अर्थ करने की रीति, और नयाभासों का वर्णन है ।

प्रकरण नव में अनेकान्त और स्याद्वाद अधिकार है ।

दसवें प्रकरण में मोक्षमार्ग अधिकार है जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव काललब्धि, नियति, कर्म वे पाँच समवाय और मोक्षमार्गके

विषय में अनेक प्रयोजनभूत बातों को स्पष्टता की है जो अवश्य समझने योग्य है। बाद में परिशिष्ट नं० १-२ पढ़ने योग्य है इस पुस्तक में अध्याय ५ से ७ तक रिया है तीसरा भाग भी छप चुका है जिसमें अध्याय ८ से १० तक पूर्ण वर्णन पायेगा।

## (१) निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध आदि:—

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वास्तव में व्यवहारमय का विषय है इसलिये उसका अर्थ करने में मुख्य ध्यान रखने की आवश्यकता है क्योंकि, निमित्तकारण वह सच्चा कारण नहीं है मात्र वह आरोपित कारण है। प्रति समय प्रत्येक द्रव्य में अनादि से अनंतकाल तक पर्यायें होती ही रहती हैं और पर्याय वह कार्य है। कार्य तो वास्तव में उपादान सदृश होता है, किन्तु उस समय जिस पदार्थपर कारण न होने पर भी कारणपनेका आरोप आता है उसे निमित्त कहते हैं उस निमित्त सम्बन्धी ज्ञान करना आवश्यक है, किन्तु निमित्तके कारण नैमित्तिकमें कुछ कार्य होता है ऐसा मानना वह निमित्त को निमित्त न मानकर वास्तव में उपादान मानने के बराबर होता है व्यवहार कारण व्यवहाररूप में रहकर निश्चय कारण हो जाता है। जीव अनादिसे व्यवहार को निश्चय मानता आ रहा है इसलिये शास्त्राभ्यास करते हुए भी यदि जीव व्यवहारको निश्चयरूप मानने का अर्थ करें तो उसको अनादि-कालीन भूत दूर नहीं होती।

निमित्त के बिना कार्य नहीं होता—एसा कथन भी व्यवहार का है, अर्थात् एसा नहीं है; किन्तु प्रत्येक कार्य के समय उचित

निमित्त उपस्थित होता है—ऐसा बतलानेके लिए वह कथन आता है; तथापि यदि उपादान को निमित्त की आवश्यकता पड़ती है या उसकी प्रतीक्षा करना पड़ती है अथवा सहायता की आवश्यकता होती है, या उसका प्रभाव पड़ता है, अथवा निमित्त के बिना उपादान में सचमुच कार्य नहीं होता—ऐसा माना जाये तो यह सिद्ध होगा कि पर के बिना स्व में कार्य नहीं होता। किंतु प्रत्येक द्रव्य का कार्य अपने-अपने वह कारकों से स्वतंत्ररूप से होता है; इसलिये ऐसा निर्णय होता है कि कार्य होते-समय निमित्त की उपस्थिति होती है इतना ज्ञान कराने के लिए उसे दर्शाया जाता है। निमित्त से कार्य हुआ—ऐसे कथन जैन शास्त्रों में आते हैं उन्हें भी व्यवहार नयका कथन समझना। वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिये कि निमित्त से नैमित्तिक कार्य नहीं हुआ है, किन्तु नैमित्तिक में स्वतंत्ररूप से कार्य हुआ उस समय निमित्त कौन था—यह बतलाने के लिये वह कथन किया है।

कोई ऐसा मानता है कि—निमित्त नैमित्तिक-सम्बन्ध जीव की पर्याय और कर्म के बीच ही होता है; अन्य किसी के बीच नहीं होता, किन्तु वह बात बराबर नहीं है। दूसरों के बीच भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। मात्र जब जब कारण बतलाना हो तब तब उपादानकारण और निमित्तकारण—ऐसा कहा जाता है, और दो पदार्थों के बीचके कारण-कार्य बतलाना हो तब निमित्त कारण और नैमित्तिक कार्य—ऐसा कहा जाता है, तथा एक ही द्रव्य में उसका कारण-कार्य बतलाना हो तो उपादानकारण और उपादेय कार्य कहा जाता है। इस सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस पुस्तक के प्रश्नोत्तर

३६६ ( पृष्ठ ३७-३८ ) में किया गया है ।

कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है कि कर्मोद्य के अनुसार जीवको Degree to Degree विकार करना ही पड़ता है—ऐसी मान्यता जो द्रव्यों की एकत्र वृद्धि में से उत्पन्न होती है । कर्म का जीव में सर्वाधा प्रभाव है वह जीवके लिये अद्रव्य प्रक्षेत्र प्रकाल प्रभाव है । इसलिये जीव वास्तव में अपने कारण विकार करता है तब निमित्त कीनसा कर्म है वह वृत्तमाने के लिये सात्त्विक में कर्म के उत्पन्न से जीव में विकार होता है—ऐसा कहा जाता है । इस सबकी स्पष्टीकरण प्रस्तोत्तर ३७१ तथा ३६६ में किया गया है । सारांश यह है कि निमित्त-व्यवहार और परद्रव्य इन सब का ज्ञान करनेकी आवश्यकता है क्योंकि उस ज्ञान के बिना यथापि ज्ञान नहीं होता । फिर भी उनमें से किसी के अध्यय से कदापि धर्म नहीं होता और वह धर्म का कारण भी नहीं होता—ऐसा प्रबुद्ध निर्णय करना चाहिये । निमित्तादिका ज्ञान कराने के लिये निमित्तकी मुख्यता से कथन होता है कार्य तो उपादान की मुख्यता से होता है ।

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव रचित पुरुषार्थसिद्धिपुपाय ग्रंथ के २२५ वें श्लोक का जो अर्थ है वह उपयोगी होने से उसका यहाँ अवतरण देते हैं ।

( २ ) मैत्री नीति अथवा नय विवक्षाः—

एकेनाकर्षन्ती दलवयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।

अमृतेन जयति जैगोनीतिर्मस्थानमेवमिव गोपी ॥ २२५ ॥

अर्थ—यधर्मी की रस्सी जीवने वाली गोबालिन की भाँति जिनेन्द्र भगवानकी जो नीति अर्थात् मय विवक्षा है वह वस्तु स्वल्प

को एक नय विवक्षा से खींचती और दूसरी नय विवक्षा से ढील देती हुई अन्त अर्थात् दोनों विवक्षाओं द्वारा जयवत रहे ।

भावार्थ—भगवान की वाणी स्याद्वादरूप अनेकान्तात्मक है, वस्तु का स्वरूप प्रधानतया गौण नय की विवक्षा से किया जाता है । जैसे कि—जीव द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है, द्रव्या-र्थिक नय की विवक्षा से नित्य है और पर्यायार्थिक नय की विवक्षा से अनित्य है । यह नय विवक्षा है ।

[ देखिये, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता द्वारा प्रकाशित—“पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय,” पृष्ठ १२३ ]

यह श्लोक ऐसा बतलाता है कि—शास्त्र में किसी स्थान पर निश्चयनय की मुख्यता से कथन है और कही व्यवहार नय की मुख्यता से, किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि सच्चा धर्म किसी समय व्यवहारनय (अभूतार्थनय) के आश्रयसे होता है और कभी निश्चयनय (भूतार्थनय) के आश्रय से होता है, धर्म तो सदैव निश्चयनय अर्थात् भूतार्थनय के विषय के आश्रय से ही होता है ।

ऐसा न्याय उसी शास्त्र के पाँचवें श्लोक में तथा श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ की गाथा ३११-३१२ के भावार्थ में दिया है, इसलिये इस श्लोक का दूसरा कोई अर्थ करना योग्य नहीं है ।

इस प्रस्तावना में मुख्य-मुख्य विषयो सम्बन्धी योग्य मार्ग-दर्शन स्पष्टता पूर्वक संक्षेप में किया गया है। इतना दर्शाने के पश्चात् नम्र अनुरोध है कि—मात्र यह प्रश्नोत्तर मालाको पढ़ लेने से तत्त्वका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये उसका यथार्थ ज्ञान करने के

लिए तब जिज्ञासा पूर्वक जानियोंका प्रत्यक्ष उपदेश सुनना चाहिये ।  
जिज्ञासुओं को सत्पुरुष श्री बानजी स्वामी के व्यापारिक व्याख्यानो  
का अवश्यें साम सेना चाहिये । जो अपनी आत्मा के नियम विरोध  
साम का कारण होगा ।

। जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर भासा तीसरा, भाग भी तीसरीबार  
छपकर तैयार हो गया है वह भी अवश्य पढ़ कर सच्चा भारतम हित  
का साम सेना चाहिये ।

बीर सं० १९४८

सोमनाथ (सौराष्ट्र)

रामजी मणिकवन्द दोशी

प्रमुख

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट



# निवेदन

जब कि मैं सावन मास स० २०१३ में प्रौढ़ जैन शिक्षणवर्ग में अभ्यास करने के लिये सोनगढ गया था और वर्ग में अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियों को पूछे जाने वाले प्रश्नों को जिसप्रकार सुन्दर रीति से समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तर की शैली समझ कर मेरे हृदय में यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तर भले प्रकार से सकलन करके स्कूल एवं पाठशाला में जैन धर्म की शिक्षा लेने वाले शिक्षार्थियों को सुलभ कर दिये जायें तो सत् धर्म की भले प्रकार से प्रभावना हो और बहुत लोगो को लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुए थे कि मालूम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई मोणकचन्दजी दोशी सपादक आत्मधर्म एवं प्रमुख श्री जैन स्वा० मंदिर ने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्नों पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजराती में तैयार की है और वह छपने भी प्रेस में चली गई है, यह जानकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिन्दी अनुवाद करने के लिये भेज दिया। इसी समय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रंथमाला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रंथमाला हो तथा वह भले प्रकार से आगामी भी चलती रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजी की आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनाने का निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्ट के अतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रंथमाला चालू की है जिसके कि पहले पुष्प के रूपमें इस जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला को प्रथम



भाग प्रकाशित हुआ है, अभी इस प्रश्नोत्तर भाग का द्वितीयभाग आपके हाथमें है तथा इसका तृतीयभाग भी प्रकाशित हो गया है।

इसके प्रथमभाग में द्रव्य गुण पर्याय तथा अभाव इन चार विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके प्रागम म्भाव युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत उत्तर दिये हैं—

इस भाग में छह कारक निमित्त उपादान तथा सात तत्त्व और नव पदार्थों का बहुत सुन्दर प्रश्नोत्तर रूप में विवेचन है तथा तीसरे भागमें प्रमाण नय निक्षेप अनेकान्त और स्याद्वाय तथा मोक्षमार्ग के ऊपर बहुत विस्तृत विवेचन है। इसप्रकार इस ग्रंथ की उपयोगिता तो इसके प्रथम व द्वितीयभाग पढ़नेसे आपको ज्ञात हो ही जावेगी। इतनी बड़ी विस्तृत पुस्तक को ३ भाग में छपाने का मेरा सात उद्देश्य यही है कि जैन समाज की शिक्षण संस्थाएँ इन पुस्तकों को धर्म की शिक्षा के लिये कक्षाओं में काम ले सकें तथा अलग अलग विषयों पर मनन करने के लिये ग्रन्थालयों को अलग अलग पुस्तक रखने में सुगमता हो।

अब मेरी अभिलाषा सफल हुई तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। इस कार्य के पूरा करने में भाई श्री मेरीचन्दजी पाटनी किशममङ्गलभासे भाई श्री हरिसासजी जीवराजजी भायाजी भावमयार बालों ने एवं ब्रह्मचारी भाई श्री गुलाबचन्दजी ने बहुत मेहनत की है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

१४५५

सोनगढ़ (सीतापूर)

निवेदक

महेन्द्रकुमार सेठी

## निवेदन

१५-२० सालसे जैन धर्म में प्रयोजनभूत तात्त्विक ज्ञान का अभ्यास करने की जिज्ञासा बढ रही है, और उसे समझने वालों की संख्या भी बढ रही है, उनका श्रेय परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी को ही है। आपके तत्त्वावधानमें दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्वारा चार लाख उपरान्त ग्रंथ छप चुके हैं। उसके अलावा सेठी ग्रंथमाला द्वारा गत छह साल से आज तक २५३०० पुस्तक छप चुके हैं। अपना हित-अहित अपने से ही हो सकता है, पर द्रव्यादिक-को दोष देना अन्याय ही है। पर्याय दृष्टि से परतत्र भी अपने अशुद्ध उपादान द्वारा-विपरीत पुरुषार्थ द्वारा स्वयं होता है। संयोग की ओर से देखने से अपने मिथ्या प्रतिभास वश 'अपनेको आप भूल के हैरान हो गया' अर्थात् शरीरादिक पर द्रव्योमें और शुभाशुभ आस्रवों में कर्त्तृपिन की रुचि और ज्ञाता स्वभावकी अरुचि द्वारा यह जीव राग की रुचि व पराश्रय की श्रद्धाका ग्रहण और स्व धर्म का त्याग कर रहा है जो सर्व दुखों का मूल है यह बड़ी भारी भूल छोड़ने के लिये श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञान-स्वरूप आत्मा का निर्णय पूर्वक यथायथा, स्वतंत्रता और वीतरागता ही ग्रहण करनी चाहिये। विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थ श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) अपने में प्रगेष्ट करने के लिये सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान द्वारा निश्चय-व्यवहार, हेय उपादेय, निमित्त-उपादान और स्वतंत्र कारण कार्य को सुनिश्चित-व्यवस्थित मर्यादा को आत्महितार्थ जानकर शुद्धनय के विषयभूत सर्वज्ञस्वभावी निज कारण परमात्मतत्त्वका आश्रय करना चाहिये, ऐसा करे तो यह शास्त्राभ्यासको निमित्त (उपकारी) कहा जायेगा। ऐसे स्पष्ट उपदेश दाता पू० गुरुदेव का जितना उपकार माना जायकम ही है।

ब्र० गुलाबचन्द जैन

वीर स० २४६० भाद्र० सुदी५ ऋषि पंचमी-सोनगढ (सौराष्ट्र)

# ॐ अर्पण ॐ

परम कृपालु पूज्य  
मास्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के  
कर कमल में

बिन्के उत्कृष्ट समृद्धमय उपदेश को प्राप्त कर इस पामर  
ने अपने अज्ञान अंधकार को दूर करने का यथार्थ भाग प्राप्त  
किया है ऐसे महान महान उपकारी सत् धर्म प्रवर्तक पूज्य श्री  
कानजी स्वामी के कर कमलों में श्री १०८ श्री कुम्भकुम्भाचार्य  
की तपोभूमि पोम्पुरहिल को बिराद यावा तथा सप्त पुनीत  
तीर्थ के उद्यार बाव ७५ श्री हीरकजयती के अवसर पर,  
अत्यन्त भावर एव भक्ति पूर्वक यह पुस्तिका अर्पण करता हूँ और  
भावना करता हूँ कि आपके बताये मार्ग पर निश्चलरूप से  
चल कर निश्चयेय अवस्था को प्राप्त करूँ ।

बीर सं० १४६०  
भाद्रपद सुदी २

बिनय सेवक  
महेन्द्रकुमार सेठी

# मुख्य विषय

प्रकरण	पृष्ठ
१—कर्ता कर्मादि छह कारक अधिकार	१
२—उपादान निमित्त तथा निमित्त नैमित्तिक अधिकार	३२
३—सात तत्त्व—नव पदार्थ अधिकार	६६

इन प्रकरणों के गौण विषयों की अनुक्रमणिका तथा आधारभूत ग्रंथों की सूची आगे दी गई है ।



## आधारभूत ग्रन्थों की सूची

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	श्री जिनमसार गुजराली
श्री लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	श्री चण्डा समाधान
श्री परमात्म बचनिका	श्री समयसार पाठ
श्री जैन सिद्धान्त वर्षण	श्री पञ्चास्तिकाय
श्री प्रवचनसार गुजराली तथा हिंदी	श्री बनारसी विश्वास
श्री मोक्षमार्गप्रकाशकगुजराली, हिंदी	श्री विद्वग्जन बोधक
श्री बुद्ध इत्य संप्रद	श्री जिनेन्द्र स्तुति
श्री मोक्षशास्त्र गुजराली	श्री अष्ट पाण्डु
श्री गोम्मटसार बीजकण्ड कर्मकोट	श्री महापद्मसा पु १३ बी
श्री पञ्चाध्यायी (हिंदी) पं० कूलचन्द जी	श्री पद्मसा पु० ७ बी
श्री पञ्चाध्यायी गुज पूर्वाख्य - उत्तराख्य	श्री अनुभव प्रकाश
श्री आत्मधर्म (गुजराली) अंक १००	श्री समयसार नाटक
श्री चिद्विज्ञान	पं० बनारसीदासजी कृत
श्री समयसार गुजराली	श्री छद्मदाशा पं० बोलठरामजी कृत
श्री समाधि शतक	श्री परमात्म प्रकाश
श्री कर्तिकेबालुप्रेषा	श्री तत्त्वार्थ सूत्र
श्री आत्मालोकन	पं० कूलचन्दजी कृत
श्री दानतराय कृत अक्षमाता	श्री अष्ट-सहस्री
श्री सर्वार्थ सिद्धि	श्री ज्ञान वर्षण
श्री तत्त्वार्थ राजवार्तिक टीका	श्री म्याय बीपिका
श्री अर्थ प्रकाशिका	श्री श्रेष्ठपदेश
श्री अतुलसागरी टीका	श्री अष्टशती
श्री तत्त्वार्थ सूत्र अंग्रेजी	श्री प्रमेयकमल मातबर
श्री बुद्ध त्वर्धमू स्तोत्र	श्री आत्ममीमांसा
श्री आलाप पद्यति	श्री तत्त्वार्थलोकवार्तिक टीका
श्री मोक्षशास्त्र पं० पद्मलालजी कृत	श्री-परीक्षा मुक्त
श्री तत्त्वार्थसार	श्री आत्मनुशासन

# प्रश्न-सूची

प्रश्न

प्रश्नोक्त

( अ )

अतरंग कारण से ही कार्य न मानने में दोष	४०१
अधिकरण, कारक	३५२
अन्वयकारण	४२३
अपादान कारक	३५१
अभावरूपनिमित्त	३६५
असमर्थ कारण	४२०
एकद्रव्यका कार्य दूसरोंके द्वारा माननेमें कितने कारकोंकी भूल ?	३६०

( आ )

आत्मा काहे का कर्त्ता है ?	३६६
आत्मा अपनी योग्यता से ही राग करता है, तो आत्माको रागादि स्वभाव हो जायेगा	३७२
आत्माको कभी कर्म का जोर है ?	३७३
आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करता है उसमें छहों कारक	३६१

( इ )

इन्द्रियों के विषय सुख दुःख दाता हैं ?	३७४
--	-----

( उ )

उत्पादन कारण	४१७
उत्पादक सामग्री के भेद	३८१
उदासीन निमित्त	३८७

उपादान कारण	३८२
उपादान उपादेय	३६३
उपकार	४२४
उपादान कारण से ही कार्य मानने में क्या दोष ?	४०१
उपादान निमित्त कारणों के बूंसरे क्या नाम हैं ?	४१४
उपादान निमित्त की चर्चा में पर, निमित्त व्यवहार देव है और भूय उपादान के आश्रय से ही नर्म होता है, उसके सात्वाधार	४३४

## ( ५ )

एक जीव बूंसरे का पात करता है ?	३६६
एक द्रव्य के या द्रव्यकी पर्यायके दो कर्त्ता ?	३६४
एक समय में कितने कारण ?	३६७

## ( ६ )

क्या कर्म के कर्म अनुसार जीव विकार करता है ?	३७१
कर्त्ता	३४७
कर्म	३४८
कर्मोपानुसार जीव को रागदि हैं ?	३७१-३६६
कर्मका तीव्र कर्म हो तब जीव पुरुषार्थ कर सकता है ?	३६७
कर्मकी बलजबरी	४०६
कार्य किसके समान होता है ?	४२३
कार्य कैसे होता है ?	३७६, ३६८, ४२३
कार्य में निमित्तका कार्य क्षेत्र कितना ?	३६८
कारण (-कारण)	३४६

कारक	३५३
कारण में निश्चय व्यवहार	३५४ से ३५७
कारकों सम्बन्धी चर्चा	३५६ से ३६४
कारण-साक्षात्-परम्परा	४२८
कारण	३८०
किसी समय जड़ कर्म का जोर है ?	३७३
कोई ऐसा जानता है कि पुद्गल निमित्तकर्त्ता होकर परिणमित होता है	३७८

## ( घ )

घडारूप कार्य में क्षणिक उपादान और त्रिकाली उपादान, उदा- सीन और प्रेरक	३८८
--	-----

## [ छ ]

छह कारक द्रव्य-गुण-पर्याय में से क्या है ?	३५८
--	-----

## [ ज ]

जड़ कर्म जीवको नरकमें ले जाते हैं ?	४१४
-------------------------------------	-----

जड़ कर्म जीवको राग कराता है ?	३७७
-------------------------------	-----

जीवको विभाव होनेमें स्फटिकका दृष्टान्त ऊपरसे कई लोगोंकी विपरीत समझ	४३०
---	-----

जीव को उपकार दूसरे कर सकते हैं ?	४२५
----------------------------------	-----

जीव और पुद्गल के विकारी भावोंके सम्बन्धमें परस्पर कर्त्ता कर्मपना है ?	३६४-६७
---	--------

## [ झ ]

ज्ञानी दूसरोंका भला करने को उपदेश देते हैं ?	३७६
--	-----



निमित्तकारण	३८४, ४३१
निमित्त कारण के भेद	३८४, ४१६
निमित्त प्रेरक-उदासीन,	३८६, ८०, ४४ ३४
निमित्त के अनेक प्रकार भावरूप-अभावरूप	३६४
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?	३६३
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कब कहलाता है ?	४०४
निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बीच और द्रव्य कर्मके बीच ही होता है या उपादान-निमित्त कारणरूप भी उनमें होता है ?	४२७
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के दृष्टान्त	४०४
निमित्त के बल से, प्रेरणा से दूसरे का कार्य होता है ?	३७४
निमित्त जो प्रेरक हो वह उपादान में कोई प्रमाण, प्रेरणा, असर करता है ?	३८३
निमित्त अकिञ्चित्कर	३६३-४००
निमित्त वास्तव में अकिञ्चित्कर क्यों है ?	४०३
निमित्त-उपादान संवाद, 'बनारसी बिलास' से अर्थ सहित	४०६-७
निमित्त उपादान को कुछ नहीं कर सकता, तो सूई से तुल्य क्यों होता है ?	४१९
निमित्त बिना कार्य होता है ?	४०८-४१०
निमित्त पाकर कार्य होता है ?	४१३
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्रव्यकर्म के साथ ही है ?	४२७
निमित्त-उपादान के प्रश्नों में क्या सिद्धांत है ?	४३३-३४
निमित्त बिना ?	४११

निश्चयकारक

३५५

( प )

परिणमन में ( कार्य में ) उपादान निमित्त दोनों होते हैं उनमें

निमित्त कारण का कार्यक्षेत्र कितना ? ३६८

पुद्गल जीव को रागादिरूप परिणमित करता है ? ३७७

पुद्गल निमित्त कर्त्ता होता है ? ३७८

प्रत्येक द्रव्यका अपनी योग्यतानुसार ही परिणमन ४०२

प्रेरक निमित्त ३८६, ६०, ६१, ६२

प्रेरक निमित्त के आधीन परिणमन करना पड़ता है ? ३६०

[ व ]

वलाधान निमित्त ४३१

( भ )

भावरूप निमित्त ३६५

[ म ]

मुख्य और उपचार कारण ४३२

[ य ]

योग्यता ३८३-४०२

योग्यता शब्द का आधार पृ० ४५ से ४८

( र )

रोग से दुःख उसके अभाव से सुख बराबर है ? ३७०

[ व ]

वस्तु का प्रत्येक परिणमन अपनी योग्यता से ४०२

विकारी भाव को जीव स्वतंत्ररूप से करता है ? ३६७

विकार भाव ( रागादि ) अहेतुक-सहेतुक ? ३६८

बिकार क्षीय से गाने तो स्वभाव हो जायेगा, इसलिये रागादि कर्मकृत हैं ?	३७२
ध्याप्य ध्यापक बिना कर्ता कर्म हो ?	३६२
ध्याप्य ध्यापक	३६३

## ( स )

समर्पकारण	४१३
सम्बन्धद्वि के शुभ भाव परस्पर से घम का कारण है ?	४२६
सम्बन्धद्वि नरक में क्यों जाता है	४१४
सम्प्रदान	३५०
संहार	४१८
सहकारी कारण	४२२-२४
साक्षात् कारण-परस्पर कारण	४२८
साधकतम कारण	४२१
संक्षी पंचेन्द्रियपना भादि निमित्त बिना मोक्षमार्ग प्रगट होता है ?	४१०

## प्रकरण सातवाँ

[ यहाँ पत्र सरण्या समझना ]

प्रश्न	५४
( अ, आ इ )	
अहम्त भगवान् के ४६ गुण	११०
॥ किन १८ दोषों से रहित हैं	११४

अज्ञानी को आत्मवस्तु में कैसी भ्रष्टा है ?	१०६
„ „ जीवाजीवतत्त्वका श्रद्धान क्यों अयथार्थ है	१०५
अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल	१०३
आचार्य के ३६ गुण	१११
आचार्य, उपाध्याय तथा नाथु का सामान्य स्वरूप	१०६
आत्मवादि मान तत्त्व सम्बन्ध में भूल	१०२-५
उपादेय तत्त्व	१०१
उपाध्याय के २५ गुण	११३

## ( त )

तत्त्व का अर्थ	६६
तत्त्व कितने ? और	६६
उनका स्वरूप क्या है	६७
तत्त्वों के विषय में चर्चा	६६-१०१
जैन धर्म	११५
देव-गुरु-धर्म का स्वरूप	१०७-१०
चारह प्रकार के तप	११२
मुनि के २८ मूल गुण	११३
सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा में देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा	१०७
सच्चे शास्त्र ( आगम ) का क्या स्वरूप है ?	११४
सर्वज्ञ का लक्षण	११४



## ❁ जैन शास्त्रों के अर्थ करने की पद्धति ❁



व्यवहारमय स्व-द्रव्य-पर-द्रव्य को तथा उसके भावों को एवम् कारण-कार्यादि को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। इसलिये ऐसे ही भ्रष्टान से मिथ्यात्व है। अतः इसका त्याग करना चाहिये।

निश्चयनय उसी को यथावत् निरूपण करता है तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता। इसलिये ऐसे ही भ्रष्टान से सम्मत्त्व होता है। अतः उसका भ्रष्टान करना चाहिये।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो जिन' मार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है उसका क्या कारण ?

उत्तर—'जिन' मार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ' इसी प्रकार है' ऐसा समझना चाहिये तथा कहीं व्यवहारमय की मुख्यता लेकर कथन किया गया है, उसे ऐसा है नहीं किन्तु निमित्तादिक की अपेक्षा से यह उपचार क्रिया है, 'ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। किन्तु दोनों नयों के कथन (व्याख्यान) को समान सत्यार्थ जानकर 'इस प्रकार भी है' और 'इस प्रकार भी है' इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन को तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा नहीं है ?

प्रश्न—यदि व्यवहारमय असत्यार्थ है तो जिन' मार्ग में उसका उप

देश क्यों दिया है ? एक मात्र निश्चयनय का ही निरूपण करना चाहिये था ।

उत्तर—ऐसा ही तर्क 'श्री समयसार' में किया है । वहाँ यह उत्तर दिया है कि जैसे किसी अनार्य म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा के बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है । इसलिये व्यवहार का उपदेश है और फिर इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है कि इस प्रकार निश्चय को अंगीकार कराने के लिये व्यवहार के द्वारा उपदेश देने हैं, किंतु व्यवहारनय है वह अंगीकार करने योग्य नहीं है ।



# प्रकरण पाँचवाँ

## कर्ता-कर्मादि वह कारक अधिकार

प्रश्न (३४७)—कर्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वतन्त्रता से (स्वाधीनता पूर्वक) अपने परिणाम को करे वह कर्ता है ।

[ प्रत्येक द्रव्य अपने में स्वतंत्र व्यापक होने से अपने ही परिणाम का स्वतन्त्ररूप से कर्ता है ]

प्रश्न (३४८)—कर्म (कार्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्ता जिस परिणाम को प्राप्त करता है वह परिणाम उसका कर्म है ।

प्रश्न (३४९)—करण किसे कहते हैं ?

उत्तर—उस परिणाम के साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं ।

प्रश्न (३५०)—सम्प्रदान किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म (परिणाम—कार्य) कर्म जिसे दिया जाय अथवा जिसके लिये किया जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं ।

प्रश्न (३५१)—अपादान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें से कर्म किया जाय उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं ।

प्रश्न (३५२)—अधिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें अथवा जिसके आधार से कर्म (कार्य) किया जाय उसे अधिकरण कहते हैं ।



[ सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में यह छह कारक एक साथ वर्तते हैं इसलिये आत्मा और पुद्गल कुछ दशा में या अधुन दशा में स्वयं छहों कारकरूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारकों की ( निमित्त कारणों की ) अपेक्षा नहीं रखते । ]

—( देखो पञ्चास्तिकाय गा० ६० संस्कृत टीका )

'.....निश्चयसे परके साथ आत्माका कारकपने का संबंध नहीं है कि जिससे बुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके लिये सामग्री ( बाह्य साधन ) सोजनेको व्यग्रतासे जीव ( व्यर्थ ही ) परतंत्र होते हैं ।

—( प्रवचनसार गाथा १६ टीका )

प्रश्न ( ३१३ )—कारक कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—'यह छह कारक व्यवहार और निश्चय—ऐसे दो प्रकार के हैं । जहाँ परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि कही जाये वहाँ व्यवहार—कारक हैं, और जहाँ अपने ही उपादान कारण से कार्य की सिद्धि कही जाये वहाँ निश्चय—कारक हैं ।'

—( प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ )

प्रश्न ( ३५४ )—व्यवहार—कारक बुष्टान्त लेकर समझाव्ये ।

उत्तर—“कुम्हार कर्ता है बड़ा कर्म है वह चक्र डोरी आदि करण हैं जस मरने वाले के लिये कुम्हार बड़ा बनाता है इस—लिये जस मरनेवाला सम्प्रदान है टोकरे में से मिट्टी लेकर बड़ा बनाता है इसलिये टोकरा अपादान है घरती के आभार से बड़ा बनाता है इसलिये घरती अधिकरण है ।

इसमे सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है, अन्य कर्म है, अन्य करण है, अन्य सम्प्रदान है, अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है।

“परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता; इसलिये यह व्यवहार छह कारक असत्य हैं, वे मात्र उप-चरित असद्भूत व्यवहारनयसे कहे जाते हैं। निश्चय से किसी द्रव्यको अन्य द्रव्यके साथ कारकपनेका सम्बन्ध है ही नहीं।”

—( श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ )

प्रश्न (३५५)—निश्चय कारक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—“मिट्टी स्वतरूप से घडारूप कार्य को पहुचती है—प्राप्त करती है इसलिये मिट्टी कर्ता और घडा कर्म है, अथवा घडा मिट्टी अभिन्न होने के कारण मिट्टी स्वय ही कर्म है, अपने परिणमनस्वभाव द्वारा मिट्टीने घडा बनाया इसलिये मिट्टी स्वय ही करण है, मिट्टीने घडारूप कर्म अपने को ही दिया इसलिये वह स्वय ही सम्प्रदान है। मिट्टीने अपने मे से ही पिण्डरूप अवस्था नष्ट करके घडारूप कर्म किया और स्वय ध्रुव रही, इसलिये स्वय ही अपादान है, मिट्टी ने अपने ही आधार से घडा बनाया इसलिये स्वय ही अधिकरण है।

इसप्रकार निश्चय से छहों कारक एक ही द्रव्यमें हैं। परमार्थत एक द्रव्य दूसरे को सहायक नहीं हो सकता इसलिये और द्रव्य स्वय ही अपने को, अपने द्वारा, अपने लिये, अपने मे से अपने मे करता है इसलिये यह निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।

उपरोक्त रीतिसे द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप सम्पदासे परिपूर्ण होने के कारण स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य उत्पन्न करने में समर्थ है उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती ॥”

—( श्री प्रवचनसार गाथा १६ भाषा )

प्रश्न (१५६)—आत्मा प्रज्ञा द्वारा भेदज्ञान करती है उसमें कौन कारक है ?

उत्तर—आत्मा कर्ता प्रज्ञा करण भेदज्ञान कर्म —इस प्रकार तीन कारक हैं ।

प्रश्न (१५७)—एक समय में किन्तु कारक होते हैं ?

उत्तर—प्रतिसमय छहों कारक होते हैं ।

प्रश्न (१५८)—यह छह कारक क्या हैं ? द्रव्य हैं भुण हैं या पर्याय ?

उत्तर—यह छह कारक द्रव्य में रहने वाले सामान्य और अणुजीवी गुण हैं । प्रतिसमय उनकी छह पर्यायें नई-नई होती रहती हैं ।  
(कर्ता कर्म करण सम्प्रदान वपादान और अधिकरण ये छह)

प्रश्न (१५९)—आत्मामें से ही आत्मा द्वारा ही शुद्धता प्रगट होती है उसमें किन्तु कारक हैं ?

उत्तर—आत्मामें से वपादान आत्मा द्वारा करण और शुद्धता प्रगट होती है वह कर्म है इस प्रकार तीन कारक हैं ।

प्रश्न (१६०)—एक द्रव्यका पर्यायरूपी कार्य वास्तवमें दूसरों के द्वारा हो सकता है दूसरों के आधार से हो सकता है—ऐसा मानने में किन्तु कारकों की भूल है ?

उत्तर—सभी कारको की भूल है, क्योंकि एक कारक को जिसने स्वतंत्र न मानकर पराधीन माना उसने छहो कारक यथार्थ नहीं माने ।

प्रश्न (३६१)—आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करता है, उसमे छहो कारक किस प्रकार लागू होते हैं ?

उत्तर—“... .केवलज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले आत्मा को वाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है । शुद्धोपयोग मे लीन आत्मा स्वय ही छह कारक रूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है । वह आत्मा स्वय ही अनात शक्तिवान् ज्ञायकस्वभाव द्वारा स्वतंत्र होने से स्वय ही कर्ता है, स्वय अनात शक्तिवान् केवलज्ञान को प्राप्त करता है इसलिये केवलज्ञान कर्म है, अथवा केवलज्ञान से स्वय अभिन्न होने के कारण आत्मा स्वय ही कर्म है, अपने अनातशक्तिवान् परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन द्वारा केवलज्ञान करता है इसलिये आत्मा स्वय ही करण है, स्वय को ही केवलज्ञान देता है इसलिये आत्मा स्वय ही सम्प्रदान है, अपनेमे से मति-श्रुता-दि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान करता है इसलिये और स्वय ही सहज ज्ञानस्वभाव द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वय ही अपादान है, अपने मे ही अर्थात् अपने ही आधार से केवल-ज्ञान करता है इसलिये स्वय ही अधिकरण है ।—इसप्रकार स्वय छह कारकरूप होने से वह “स्वयभू” कहलाता है ...”

( श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ )

प्रश्न (३६२)—व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता-कर्म की स्थिति हो सकती है ?

उत्तर—नहीं व्याप्यव्यापक भावके संभव बिना कर्ता—कर्म की स्थिति नहीं ही हो सकती ।

व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कसृ कर्मस्थिति ?

अर्थ—व्याप्यव्यापक भाव के संभव बिना कर्ता  
कर्म की स्थिति कैसी ?

( श्री समयसार गाथा ७५ कसृश ४२ )

प्रश्न (३६३)—व्याप्यव्यापक भाव का क्या अर्थ ?

उत्तर— 'ओ सर्व धनस्थाना में व्यापे वह तो व्यापक है और कोई एक धनस्था विशेष वह ( उस व्यापक का ) व्याप्य है इस प्रकार द्रव्य तो व्यापक है और पर्याय व्याप्य है द्रव्य-पर्याय अनेक रूप ही हैं—ऐसा होने से द्रव्य पर्यायमें व्याप्त होता है और पर्याय द्रव्य द्वारा व्याप्त हो जाती है । ऐसा व्याप्यव्यापकपना सत्स्वरूप में हो ( अभिन्न सत्तायाम् पदार्थमें ही ) होता है असत्स्वरूपमें ( भिन्नकी सत्ता—सत्त्व भिन्न—भिन्न है ऐसे पदार्थों में ) नहीं ही होता ।

अहाँ व्याप्यव्यापक भाव हो वहीं कर्ता—कर्म भाव होता है व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता—कर्म भाव नहीं होता । ऐसा जो जाने वह—मुद्गल और आत्मा में कर्ता—कर्म भाव नहीं है—ऐसा जानता है । ऐसा जानने से वह ज्ञानी होता है कर्ता—कर्म भाव रहित होता है और ज्ञाता—दृष्टा—अगत का साक्षी—भूत—होता है ।

( श्री समयसार कसृश ४२ भावार्थ )

व्याप्यव्यापक भाव या कर्ता—कर्म भाव एक ही पदार्थ म

लागू होते हैं, भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें वे लागू नहीं हो सकते ।

वास्तवमें कोई दूसरोका भला-बुरा कर सकता है, कर्म जीवको ससारमें परिभ्रमण कराते हैं—इत्यादि मानना वह अज्ञान है ।

निमित्तके विना कार्य नहीं होता, निमित्त पाकर कार्य होता है—यह कथन व्यवहारनयके हैं । उन्हें निश्चयका कथन मानना भी अज्ञानता है ।

प्रश्न (३६४)—जीवके विकारी परिणाम और पुद्गलके विकारी परिणाम (कर्म) को परस्पर कर्ताकर्मपना है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि—

(१) “जीव, कर्मके गुणोंको नहीं करता, और कर्म जीवके गुणोंको नहीं करता, परन्तु परस्पर निमित्तसे दोनोंके परिणाम जानो इस कारण आत्मा अपने ही भावसे कर्ता है, परन्तु पुद्गल कर्म द्वारा किये गये सर्व भावोंका कर्ता नहीं है ।”

( श्री समयसार गाथा ८०-८१-८२ )

(२) “ जिस प्रकार मिट्टी द्वारा घड़ा किया जाता है उसी प्रकार अपने भाव द्वारा अपना भाव किया जाता है इस-लिये, जीव अपने भावोंका कर्ता कदाचित् है, किन्तु जिसप्रकार मिट्टी द्वारा वस्त्र नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार अपने भाव द्वारा परभाव किया जाना अशक्य होने से (जीव) पुद्गल भावोंका कर्ता तो कदापि नहीं है यह निश्चय है ।”

( श्री समयसार गाथा ८० से ८२ की टीका )

- (३) '...संसार और निःसंसार अवस्थाओंको पुद्गल कर्मके विपाकका समब और असमब निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीवको व्याप्यव्यापक भावको अभाव होनेसे कर्ताकर्मपने की असिद्धि होनेसे जीव ही स्वयं अतव्यापक होकर संसार अथवा निःसंसार अवस्थामें आदि-मध्य अंतमें व्याप्त होकर संसार अथवा निःसंसार ऐसे अपनेको करता हुआ अपने एक को ही करता हुआ प्रतिमासित हो परन्तु अन्य को करता हुआ प्रतिमासित न हो ।"

( श्री समयसार गाथा ८३ की टीका )

- (४) 'आत्मा अपने ही परिणामको करता हुआ प्रतिमासित हो पुद्गलके परिणामको करना तो कभी प्रतिमासित न हो । आत्मा और पुद्गल—दोनों की जिया एक आत्मा ही करता है—ऐसा मानने वाले मिथ्यावृष्टि हैं । अङ्ग-भेदन की एक क्रिया हो तो सर्व द्रव्य बदल जायेंगे सर्वका सोप हो जाये—यह महान दोष उत्पन्न होगा ।

( श्री समयसार गाथा ८६ का भावार्थ )

- (५) .. इसलिये जीवके परिणामको अपने परिणामको और अपने परिणामके फलको न जानने वाला ऐसा पुद्गल द्रव्य... परद्रव्य परिणामस्वरूपसे कर्मका नहीं करना इसलिये उस पुद्गलद्रव्यको जीवके साथ कर्ताकर्म भाव नहीं है ।

( श्री समयसार गाथा ७६ टीका )

(६) “ .कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कर्ता है ही नहीं, किन्तु सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं । मात्र यह जीव व्यर्थ ही कषायभाव करके व्याकुल होता है । और कदाचित् अपनी इच्छानुसार ही पदार्थ परिणमित हो, तो भी वह अपने परिणमित करनेसे परिणमित नहीं हुआ है, किन्तु जिसप्रकार बालक चलती हुई गाडीको धकेलकर-ऐसा मानता है कि “इस गाडीको मैं चला रहा हूँ”-इसी प्रकार वह असत्य मानता है ।

( श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधिकार ४-पृष्ठ ६२ )

इस परसे सिद्ध होता है कि-जीवके भावका परिणमन और पौद्गलिक कर्मका परिणमन एक-दूसरेसे निरपेक्ष स्वतंत्र है, इसलिये जीवमे रागादि भाव वास्तवमे द्रव्यकर्मके उदय-के कारण होते हैं, जीव सचमुच द्रव्यकर्मको करता है और उसका फल भोगता है-इत्यादि मान्यता वह विपरीत मान्यता है । जीवके रागादिभावके कारण कर्म आये और कर्मका उदय आया इसलिये जीवमे रागादिभाव हुआ-ऐसा है ही नहीं जीवके भावकर्म और द्रव्यकर्मके बीच मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, कर्ताकर्मभाव नहीं है, क्योंकि दोनोंमें अत्यन्तभाव है ।

प्रश्न (३६५)-एक द्रव्यके या द्रव्यकी पर्यायके दो कर्ता हो सकते हैं ?  
उत्तर-नहीं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्यका परिणमन स्वतंत्र है, वह किसी परद्रव्य या निमित्तकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता, वह स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है ।



(१)—“यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।

या परिणतिः क्रिया सा भयमपि भिन्ना न वस्तुतयो ॥ ५१ ॥

अर्थ—जो परिणमित होता है वह कर्ता है ( परिणमित होने वालेका ) जो परिणाम वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है, —यह तीनों वस्तुरूपसे भिन्न नहीं हैं ।’

( कर्ता कर्म और क्रिया—यह तीनों एक द्रव्यकी अभिन्न भव स्थाएँ हैं, प्रवेश भेदरूप भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं । )

( श्री समयसार गाथा ८६ कसष्ठ ५१ )

(२)—“एकः परिणमति सदा परिणामो जायते रदकस्य ।

एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एकके ही सदा परिणाम होते हैं (एक अवस्थासं ग्रह्य अवस्था एककी ही होती है) और एककी ही परिणति—क्रिया होती है क्योंकि अनेकरूप होने पर भी एक ही वस्तु है, भेद नहीं है ।

( श्री समयसार कसष्ठ ५२ )

(३)—“नोभौ परिणमतः ससु परिणामो नोमयोः प्रजायेत ।

समयोऽपि परिणतिः स्यादनेकमनेकमेव सदा ॥ ५३ ॥

अर्थ—दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते दो द्रव्योंका एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्योंकी एक परिणति—क्रिया नहीं होती क्योंकि अनेक द्रव्य है वे सबैक अनेक ही हैं (व्यक्तकर एक नहीं हो पाते )

( श्री समयसार कसष्ठ ५३ )

(४)—“नैकस्य हि कर्तारो द्वौ स्तो द्वे कर्मणो न चैकस्य ।

नैकस्य न क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥ ५४ ॥

अर्थः—एक द्रव्यके दो कर्ता नहीं होते, और एक द्रव्यके दो कर्म नहीं होते तथा एक द्रव्यकी दो क्रिया नहीं होती; क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता ।”

( श्री समयसार—कलश ५४ )

इससे समझना चाहिये कि—जीव शरीरादि परकी क्रिया नहीं कर सकता, - निमित्तसे सचमुच कार्य होता है—ऐसा मानना वह एक भ्रम है, क्योंकि एक कार्यके दो कर्ता नहीं हो सकते ।

प्रश्न (३६६)—आत्मा काहेका कर्ता है ?

उत्तर—आत्मा अपने परिणामोका ही—शुभ, अशुभ या शुद्ध भावो-का ही कर्ता है, किन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और शरीरादि नोकर्मका कभी कर्ता है ही नहीं । क्योंकि—

( १ )—“अज्ञान ज्ञानमप्येव कुर्वन्नात्मानमजसा ।

स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥ ६१ ॥

अर्थ.—इसप्रकार वास्तवमे अपनेको अज्ञानरूप या ज्ञानरूप करता हुआ आत्मा अपने ही भावोका कर्ता है, परभावोका (पुद्गल भावोका )- कर्ता तो कभी है ही नहीं ।”

( श्री समयसार कलश ६१ )

( २ )—“आत्मा ज्ञान स्वयं ज्ञान ज्ञानादन्यत् करोति किम् ।

परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ ६२ ॥

अर्थ.—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ही ज्ञान है, वह ज्ञानके अतिरिक्त ( जाननेके अतिरिक्त ) दूसरा क्या करेगा ? आत्मा परभाव-का कर्ता है ऐसा मानना ( तथा कहना ) वह व्यवहारी जीवोका मोह ( अज्ञान ) है ।”

( श्री-समयसार—कलश ६२ )

(३) 'प्रथम तो आत्माका परिणाम सचमुच स्वयं आत्मा ही है क्योंकि परिणामी परिणामके स्वरूपका कर्ता होनेके कारण परिणामसे अनन्य है और जो उसका (आत्माका) तत्वाविध परिणाम है वह जीवमयी क्रिया ही है ... और जो ( जीवमयी ) क्रिया है वह आत्मा द्वारा स्वसंज्ञक्यसे प्राप्य होनेसे कर्म है इसलिये परमार्थसे आत्मा अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस भावकर्मका ही कर्ता है परन्तु पुद्गल परिणाम स्वरूप द्रव्यकर्मका नहीं ।

( श्री प्रवचनसार गा० १२२ की टीका )

(४) 'व्यवहारसे (सोच) मानते हैं कि जगतमें आत्मा बड़ा वस्त्र रूप इत्यादि वस्तुओंको और इन्द्रियोंको अनेक प्रकारके क्रोधादि द्रव्यकर्मोंको और शरीरादि लोकमोंको करता है ।

( श्री समयसार गाथा ६८ ) किन्तु ऐसा मानना वह व्यवहारी जीवोंका व्यामोह ( भ्रान्ति भ्रमान ) है क्योंकि—

'यदि निश्चयसे यह आत्मा परद्रव्य स्वरूप कर्मको करे तो परिणाम—परिणामीपना धर्म्य किसीप्रकार नहीं बन सकता इसलिये वह ( आत्मा ) निजमसे तन्मय ( परद्रव्यमय ) हो जाये परन्तु वह तन्मय तो नहीं है क्योंकि कोई द्रव्य धर्म्य द्रव्यमय हो जाये तो उस द्रव्यके नाशकी आपत्ति ( दोष ) पायेगा इसलिये आत्मा व्याप्य व्यापक भावसे परद्रव्य स्वरूप कर्मका कर्ता नहीं है ।

( श्री समयसार—गाथा ६९ टीका )

'योग अर्थात् ( मन-वचन-कायके निमित्तसे ) आत्मप्रदेशोंका चसन और उपयोग अर्थात् ज्ञानका कर्पाधिक साध उपयुक्त होना बुद्धना । यह मोम और उपयोग घटादिक तथा क्रोधादिकको निमित्त

हैं इसलिये उन्हें तो घटादिक तथा क्रोधादिकका निमित्त कर्ता कहा जाता है, किन्तु आत्माको उनका कर्ता नहीं कहा जाता । आत्माको ससारदशामे अज्ञानसे मात्र योग-उपयोगका कर्ता कहा जा सकता है ।

तात्पर्य यह है कि—“द्रव्यदृष्टिसे तो कोई द्रव्य अन्य किसी द्रव्यका कर्ता नहीं है, परन्तु पर्यायदृष्टिसे किसी द्रव्यकी पर्याय किसी समय किसी अन्य द्रव्यकी पर्यायको निमित्त होती है, इसलिये इस अपेक्षासे एक द्रव्यके परिणाम अन्य द्रव्यके परिणामके निमित्त-कर्ता कहलाते हैं । परमार्थतः द्रव्य अपने ही परिणामोका कर्ता है, अन्यके परिणामोका अन्य द्रव्य कर्ता नहीं है ।”

—( श्री समयसार गाथा १०० का भावार्थ )

जो इस प्रकार आत्माका स्वरूप समझता है उसे सयोगकी पृथक्ता, विभावकी विपरीतता और स्वभावके सामर्थ्यका भान होनेसे स्व-सन्मुखता प्राप्त होती है ।

“जो पुरुष इसप्रकार “कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है”—ऐसा निश्चय करके वास्तवमे परद्रव्यरूप परिणमित नहीं होता, वही पुरुष—जिसका परद्रव्यके साथ सम्पर्क रुक गया है और जिसके पर्याय द्रव्यके भीतर प्रलीन हो गई हैं ऐसे—शुद्ध आत्माको उपलब्ध करता है, परन्तु अन्य कोई ( पुरुष ऐसे शुद्ध आत्माको उपलब्ध नहीं करता ।”

( श्री प्रवचनसार गाथा १२६ टीका )

प्रश्न (३६७)—क्या जीव विकार स्वतन्त्ररूपसे करता है ?

उत्तर—हाँ, क्योंकि—

(१) 'पूर्वकालमें बंधे हुए द्रव्यकर्मोंका निमित्त जीव पाकर अपनी अशुद्ध चेतन शक्ति द्वारा रामादि भावोंका (विकारका) कर्ता बनता है तब ( उसी समय ) पुद्गल द्रव्य रागादि भावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे (अपनेउपादानकारणसे) अष्टकर्मरूप भावको प्राप्त करता है ।

“जिसप्रकार चन्द्र या सूर्यके प्रकाशका निमित्त पाकर संख्या के समय आकाशमें अनेक रंग बादल इन्द्रधनुष मंडसादिक नाना प्रकारके पुद्गल स्कंध अथ किसी कर्ताकी अपेक्षा रहे बिना ( अपनी शक्तिसे ) ही अनेक प्रकार परिणमित होते हैं उसी प्रकार जीव द्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल वर्गगाएँ अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावस्थादि आठ प्रकारसे कर्म वसा-रूप होकर परिणमित होती हैं ।

( श्री पञ्चास्तिकाय गाथा ६६ की हिन्दी टीका )

(२) ब्रह्म प्रकरणवशात् अशुद्ध निश्चयमसे जीवके रागादि विभाव परिणामोंको भी ( जीवका ) स्वभाव कहा गया है । ( देखो पञ्चास्तिकाय गाथा ६५ की श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका )

(३) यद्यपि निश्चयसे अपने निजरससे ही सर्ववस्तुधर्मोंका अपने स्वभावभूत ऐस स्वस्व परिणमनमें समर्पण है तथापि (आत्माको) अनाविसे अन्य वस्तुभूत मोहके साथ संयुक्तता होनेसे आत्माके उपयोगका मिथ्यादर्शन अज्ञान और अभिरति

अप्राधान्य होनेवाला यह कार्य विकारी है स्वभावभाव नहीं है; किन्तु अवस्तुभाव है—ऐसा बतलाने के लिये तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिये 'निमित्त पाकर' ( इस ) शब्द का उपयोग किया जाता है । (—देखो आत्मावलोचन पृष्ठ-५५ ) ।

—ऐसा तीन प्रकारका परिणाम विकार है

( श्री समयसार गाथा ८६ की टीका )

(४) “आत्माके रागादि उत्पन्न होते हैं वे अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चयसे विचार किया जाये तो अन्य द्रव्य रागादिक का उत्पन्न करनेवाला नहीं है, अन्य द्रव्य उनका निमित्त मात्र है, क्योंकि अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्य, गुण पर्याय उत्पन्न नहीं करते ऐसा नियम है। जो ऐसा मानते हैं ( ऐसा एकान्त करते हैं ) कि—“पर द्रव्य ही मुझे रागादिक उत्पन्न कराते हैं,” वे नय विभागको नहीं समझते है, वे मिथ्यादृष्टि हैं। यह रागादिक जीवके सत्त्वमे उत्पन्न होते हैं, पर द्रव्य तो निमित्त मात्र है—ऐसा मानना वह सम्यग्ज्ञान है

( श्री समयसार गाथा ३७२ की टीकाका भावार्थ )

(५) “ परमार्थसे आत्मा अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस भावकर्म का ही कर्ता है — — — परमार्थ से पुद्गल अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस द्रव्यकर्म का ही कर्ता है, परन्तु आत्मा के कर्म स्वरूप भावकर्म का नहीं।”

—(देखो, प्रवचनसार गा० १२२ की टीका)

(६) “ जब तक स्व-परका भेदज्ञान न हो तबतक तो उसे रागादिक का—अपने चेतनरूप भाव कर्मोंका—कर्ता मानो, और भेद-विज्ञान होनेके पश्चात् शुद्ध विज्ञानधन, समस्त कर्तापनेके भावसे रहित एक ज्ञाता ही मानो—इसप्रकार एक ही आत्मामे कर्तापना तथा अकर्तापना—यह दोनो भाव विवक्षावश सिद्ध होते हैं। ऐसा स्याद्वाद मत जैनोका है ऐसा (स्याद्वाद अनुसार) माननेसे पुरुषको ससार—मोक्ष आदिकी सिद्धि होती है,

सकमा एकान्त माननेसे सब निरूपय—व्यवहारका सोप होता है।”

( श्री समयमार कला २०५ भाषार्थ )

(७) 'जीव यह बिचार अपने दोषम करता है इसलिये वे स्वकृत हैं, किन्तु उन्हें स्वभाव दृष्टिके पुरुषार्थ द्वारा अपनेमेंसे दूर किया जा सकता है—अपुष्ट निरूपयनयस वह स्वकृत है और दूर किया जा सकता है इसलिये निरूपयसे वह परकृत है—किन्तु वे परकृतादि नहीं हैं। आते मान अपनेमेंम दूर किये जा सकते हैं इतना ही वे दमति हैं ।

( पञ्चाध्यायी गुरुवर्ती उत्तरार्द्ध गा० ७२ का भाषार्थ )

“पञ्चाध्यायी उत्तरार्द्ध” म—दस विवारी भावकी भाषा ७६ में उद्गुणावृत्ति कहा है भाषा १०५ में “तद्गुणाकार मंगानि” कहा है भाषा १२० में “परगुणाकार स्वपुण्यपुति” कहा है तथा भाषा २८२ में “स्वरगुणाकार” कहा है । और उग पर्ववमे धरना ही दोष है अन्य किमीका उममें विविध दोष व हम्पारो नही है तथा बतलानेके लिये उगे भाषा ६० और ७६ में जीव स्वयं

कारण पर्याय अपेक्षासे जीवका स्वतत्त्व है ।

“जड़ कर्मके साथ जीवका अनादि ( निमित्त-निमित्तिक ) संबंध है और जीव उसके वश होता है इसलिये विकार होता है; किंतु कर्म के कारण विकार भाव नहीं होता-ऐसा भी औदयिकभाव सिद्ध करता है ।” ( देखो मोक्षशास्त्र हिन्दी आवृत्ति पृष्ठ २११ )

“कोई निमित्त विकार नहीं कराता, किन्तु जीव स्वयं निमित्ताधीन होकर विकार करता है । जीव जब पारिणामिक भावरूप अपने स्वभावकी ओरका लक्ष करके स्वाधीनता प्रगट करता है तब निमित्ताधीनपना दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है-ऐसा औपशमिकभाव साधकदशाका क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव-यह तीनों सिद्ध करते हैं ।

( देखो, मोक्षशास्त्र हिन्दी आवृत्ति अ० २, सूत्र १ की टीका-पृष्ठ २१२ )

( ६ ) बन्धका सक्षिप्त स्वरूप ऐसा है कि:—

“रागपरिणाम ही आत्माका कार्य है, वही पुण्य पापरूप द्वैत है, राग परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उसीका ग्रहण-त्याग करनेवाला है, —यह शुद्धद्रव्यके निरूपण स्वरूप निश्चयनय है ।”

( प्रवचनसार गाथा १८६ की टीका )

( १० ) ‘मनुष्यादि पर्यायोमे कर्म कही जीवके स्वभावका हनन नहीं करता या उसे आच्छादित नहीं करता, परन्तु वहाँ जीव स्वयं ही अपने दोषसे कर्मानुसार परिणमित होता है, इसलिये उसे अपने स्वभावकी उपलब्धि नहीं है । जिसप्रकार पानीका प्रवाह प्रदेशकी अपेक्षासे वृक्षरूप परिणमित होता हुआ अपने प्रवाहीपने-रूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता-अनुभव नहीं करता, और स्वादकी अपेक्षासे वृक्षरूप परिणमित होता हुआ अपने स्वादिष्ट-



पने रूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा भी प्रवेशकी अपेक्षासे स्व-कर्म अनुसार परिणमित होता हुआ अपने अमूर्तपने रूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता और भाव की अपेक्षासे स्व-कर्म रूप परिणमित होता हुआ उपरागरहित विष्णुदिवानपने रूप अपने स्वभावको उपलब्ध नहीं करता। इससे ऐसा निर्धार होता है कि मनुष्यादि पर्यायोंमें जीवोंको अपने ही दोषसे अपने स्वभावकी अनुपसन्धि है कर्मादिक अन्य किसी कारणसे नहीं। 'कर्म जीवके स्वभावका परामर्श करते हैं'—ऐसा कहना तो उपचार कथन है परमार्थसे ऐसा नहीं है।

( श्री प्रबचनसार गाथा ११८ का भावार्थ )

प्रश्न (३६८) —विकारीभाव अहेतुक है या सहेतुक ? —

उत्तर—निश्चयसे विकारी भाव अहेतुक है ; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वतंत्ररूपसे करता है किंतु विकारी पर्याय के समय निमित्तका आश्रय होता है इसलिये—अवधारणसे यह सहेतुक है । ...परमार्थसे अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यके भाव का कर्ता नहीं होता इसलिये जो चेतनके भाव है उनका कर्ता चेतन ही होता है । इस जीवको अज्ञानसे-जो मिथ्यात्वादि भावरूप परिणाम हैं वे चेतन हैं जब नहीं हैं अमुक्त निश्चयनय से उन्हें विदामात्र भी कहा जाता है । इसप्रकार वे परिणाम चेतन होनेसे उनका कर्ता भी चेतन ही है क्योंकि चेतन कर्म का कर्ता चेतन ही होता है—यह परमार्थ है । अमेद दृष्टिमें तो जीव कुछ चेतनामात्र ही है, परन्तु जब वह कर्मके निमित्तसे परिणमित होता है, तब तब—उन परिणामोंसे युक्त होता है और तब परिणाम-परिणामीकी भेद दृष्टिमें अपने अज्ञान

भावरूप परिणामोका कर्ता जीव ही है। अभेद दृष्टिमे तो कर्ता कर्म भाव ही नहीं है, शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु है..”

( श्री समयसार गाथा ३२८ से ३३१ का भावार्थ )

[ अधिक स्पष्टीकरणके लिये देखिये, अगले प्रश्नका उत्तर ]

पुनश्च, दूसरे प्रकारसे देखने पर आत्मा स्वतंत्ररूपसे विकार करता है इसलिये वह अपना हेतु है, इसलिये उस अपेक्षा से वह सहेतुक है, और पर उसका सच्चा हेतु नहीं है, इसलिये उस अपेक्षासे अहेतुक है।

प्रश्न (३७६)—एक जीव दूसरे जीवका घात कर सकता है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि—

- (१) अस्तित्वगुणके कारण किसी जीव या पदार्थका कभी नाश नहीं होता, इसलिये कोई किसीको मार या जिला नहीं सकता।
- (२) सयोगरूप जड शरीर भी स्वतंत्र पुद्गल द्रव्य है, उसका भी कोई नाश नहीं कर सकता।
- (३) जिस शरीरका वियोग हो उसका व्यवहारसे घात (नाश) कहलाता है। जीव और शरीरका वियोग अपनी-अपनी योग्यतासे होता है; उसमे आयुकर्म पूरा हुआ वह निमित्त है।
- (४) घात करनेवाला जीव दूसरेका घात करनेका कषायभाव करके अपने शुद्ध चैतन्यभावका ही मात्र घात कर सकता है, अन्य कुछ नहीं कर सकता।
- (५) परमार्थसे कोई द्रव्य किसीका कर्ता हर्ता नहीं हो सकता।  
(—प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ )
- (६) जगत्मे छहोंद्रव्य नित्यस्थिर रहकर प्रतिसमय अपनी अवस्थाका उत्पाद-व्यय करते रहते हैं, —इसप्रकार अनन्त जड-चेतन द्रव्य

एक-दूसरेस स्वतंत्र हैं, इसलिये वास्तवमें किसीका नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता, और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं, अर्थात् इस जगतमें कोई परको उत्पन्न करनेवासा परकी रक्षा करनेवासा या विनाश करनेवासा है ही नहीं।

- (७) ....जीव पर जीवोंको सुखी-दुखी आदि करनेकी बुद्धि करता है परन्तु पर जीव तो अपने करनेसे सुखी-दुखी नहीं होते इसलिये वह बुद्धि निरर्थक होनेसे मिथ्या है—भूठी है।”  
( श्री समयसार गाथा २१६ का भावार्थ )

प्रश्न (१७०)—रोगके कारण दुःख और उसके अभावमें सुख होता है—ऐसी मान्यतामें सत्यासत्यता क्या है ?

उत्तर—रोग शरीरकी अवस्था है। शरीर तो पुद्गल जड़ है उसे सुख-दुःख होता ही नहीं। जीव अपने अज्ञानपनेसे शरीरमें एकत्र बुद्धि करे तो उसे सुख-दुःख मामूम होता है और सच्चे ज्ञान द्वारा परमें एकत्र बुद्धि न करे तो उसे सुख-दुःखकी वृत्ति उत्पन्न न हो।

ज्ञानी शरीरकी रोगग्रस्त ब्रह्माके कारण अपनेको किंचित् दुःख नहीं मानते। उन्हें अपनी सहजवृत्तिकी निर्बलतासे अल्प दुःख होता है किन्तु वह गौण है क्योंकि वे दुःखके स्वामी नहीं बनते। अपने प्रबुध स्वभावकी वृद्धिके बलसे उनके राग-द्वेष दूर होता जाता है और ज्यो-ज्यों कष्टोंका अभाव होता जाता है त्यों त्यों उन्हें सुखका अनुभव निरन्तर वर्तता रहता है।

....सुखी-दुखी होना इच्छानुसार समझना किन्तु

बाह्य कारणोंके आधीन नहीं. इच्छा होती है वह मिथ्यात्व, अज्ञान और असयमसे होती है तथा इच्छामात्र आकुलता-मय है और आकुलता ही दुःख है मोहके सर्वथा अभावसे जब इच्छाका सर्वथा अभाव हो तब सर्व दुःख दूर होकर सत्य सुख प्रगट होता है ।”

देखो, मोक्षमार्ग प्रकाशक गुजराती आवृत्ति पृष्ठ ७५-७६ )  
न (३७१)-क्या जीव कर्मके उदय अनुसार विकार करता है ?  
तर—नहीं, क्योंकि —

१-“मोहकर्मका विपाक होने पर जीव जिसप्रकारका विकार करे तदनुसार जीवने फल भोगा कहलाता है । उसका अर्थ इतना है कि जीवको विकार करनेमें मोह कर्मका विपाक निमित्त है । कर्मका विपाक कर्ममें होता है जीवमें नहीं होता । जीवको अपने विभावभावका अनुभव हो वह जीवका विपाकअनुभव है ।”

( गुजराती मोक्षशास्त्र अ० ८, सूत्र २१ टीका )

२-“ ‘औदयिकभाव’ में सर्व औदयिकभाव बन्धके कारण हैं—ऐसा नहीं समझना चाहिये, किन्तु मात्र मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग—यह चार भाव बन्धके कारण हैं—ऐसा जानना ।” ( श्री घवला पुस्तक ७, पृष्ठ ६-१० )

३-“औदयिका भावा बन्धकारणम्”—इसका अर्थ इतना ही है कि यदि जीव मोहके उदयमें युक्त हो तो बन्ध होता है । द्रव्यमोहका उदय होने पर भी यदि जीव शुद्धात्म भावना के बल द्वारा भावमोहरूप परिणमित न हो तो बन्ध नहीं होता । यदि जीवको कर्मके उदय मात्रसे बन्ध होता हो

तो संसारीको सर्वदा कर्मके उदयकी विद्यमानतासे सर्वदा बन्ध ही होता रहे, कभी मोक्ष होगा ही नहीं, इसलिये ऐसा समझना कि कर्मका उदय बन्धका कारण नहीं है किन्तु जीवका भावमोहरूप परिणमन होना ही बन्धका कारण है ।

( प्रवचनसार (हिन्दी) पृष्ठ ५८-५९ श्री जयसेनाचार्यकृत गाथा ४५ की टीका )

४-तेषां जीवगतरागादि भावप्रत्ययानामभावे, द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि । सर्वोद्धानिष्टविषयममत्वा भावपरिणता जीवा न बध्यन्त इति । तथाहि—यदि जीवगतरागाद्यभावेऽपि द्रव्यप्रत्ययो दयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदेव बन्ध एव । कस्मात् । संसारिणां सर्वदेव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति ।

अर्थ—द्रव्यात्मक विद्यमान होने पर भी जीवके रागादि भावासक्त के अभावसे सर्व इष्ट-अनिष्ट विषयोंमें । ममत्वभावरूप । परिणमित न होनेवासे जीव बंधते नहीं हैं और यदि जीवको रागादि का अभाव होने पर भी द्रव्यात्मकके उदयमात्रसे बन्ध हो तो संसारी जीवोंको सर्वदा ही कर्मोंका उदय होनेसे, सर्वदा बन्ध ही हो । ( श्री पञ्चास्तिकाय गाथा १४९ की जयसेनाचार्यकृत टीका ) ।

—जानीको यदि पूर्ववत् द्रव्यप्रत्यय विद्यमान है तो भले ही तथापि ये ( जानी ) तो निरात्मक ही है क्योंकि कर्मोदयका कार्य जो राग-द्वेष मोहरूप आत्मबलमान उसके अभावमें द्रव्यप्रत्यय बन्धक कारण नहीं है ( जिसप्रकार पुरुष को रागभाव हो तभी मोक्ष प्राप्त हो उसे बंध कर सकती है उसी प्रकार जीवको आत्मबलमान ही तभी उदयप्राप्त द्रव्य

प्रत्यय नवीन बन्ध कर सकते हैं ।”

( श्री समयसार गाथा १७३ से १७६ की टीका )

६-इससे सिद्ध होता है कि-कर्मोदय जीवको विकार कराता है अर्थात् कर्मोंका जैसा उदय हो तदनुसार जीवको विकार करना पड़ता है-ऐसा नहीं है । जीव अपनी अज्ञानतावश कर्मोदयमे युक्त हो, तभी वह कर्मोदय अपने विकारमे निमित्तभूत कहलाता है, किन्तु यदि वह अपने आत्मस्वरूपमे स्थिर होकर कर्मोदयमे युक्त न हो तो वह कर्मोदय उसमे विकारका निमित्त नहीं होगा और न कर्मके नवीन बन्धका निमित्त कारण बनेगा, किन्तु निर्जराका कारण होगा ।

७-“ यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्यारूप कर्ममे न पड़कर स्व-को युक्त न करे तो जड़का (कर्मका) कोई जोर नहीं है ।”

( श्री दीपचदजीकृत अनुभवप्रकाश गुजराती आवृत्ति पृ० ३७ )

८-अज्ञानी जीव रागद्वेषकी उत्पत्ति परद्रव्य (कर्मोदि) से मानकर परद्रव्य पर कोप करता है कि-“यह परद्रव्य मुझे राग-द्वेष उत्पन्न करते हैं, उन्हें दूर करूँ ।”-ऐसे अज्ञानी जीव को समझानेके लिये आचार्यदेव उपदेश देते हैं कि-राग-द्वेष की उत्पत्ति अज्ञानसे आत्मामे ही होती है और वे आत्माके ही अशुद्धपरिणाम हैं, इसलिये उस अज्ञानका नाश करो, सम्यग्ज्ञान प्रगट करो, आत्मा ज्ञानस्वरूप है-ऐसा अनुभव करो; परद्रव्यको राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाला मानकर उस पर कोप न करो ।” ( श्री समयसार कलश २२० का भावार्थ )

९-कर्मका उदय जीवको कोई असर नहीं कर सकता-

यह बात श्री समयसार नाटकके सर्वविष्णुछि द्वारमें निम्ना  
नुसार समझाई है —

कोउ शिष्य कहै स्वामी रागदोष परिनाम  
ताकी मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है  
पुण्यस करम भोग किधौ इन्द्रिनिर्वा भोग  
किधौ बन किधौ परिजन किधौ भौन है ? ”

अर्थ—शिष्य पूछता है कि हे स्वामी ! राग—दोष परिणामों का  
मूल प्रेरक कौन है वह आप कहिये । ( क्या वह ) पौण्डसिक कर्म  
है ? योग ( मन—बचन—कामकी क्रिया ) है इन्द्रियोंका भोग  
है ? बन है ? परिजन है ? या मकान है ?

गुरु कहैं छहों वर्ष अपने अपने रूप  
सबमिकी सदा असहाई परिनौन है  
कोउ दरब काहुकी न प्रेरक कदाचि ताते  
रागदोष मोह मृपा भविरा अर्थात्त है ।

अर्थ—गुरु समाधान करते हैं कि छहों द्रव्य अपने-अपने स्वरूप  
में सबैव असहाय परिणमन करते हैं इसलिये किसी द्रव्य किसी द्रव्य  
की परिणतिके लिये कभी भी प्रेरक नहीं होते इसलिये राग-दोष  
का मूल कारण मोह मिथ्यात्वका भविरा पाम है ।

( देखो समयसार नाटक पृष्ठ-३५१-३५२ )

१०—भावकर्मका कर्ता अज्ञानी जीव ही है—ऐसा श्री आचार्य  
रेश समयसार में मुक्ति द्वारा निम्नानुसार सिद्ध करते हैं —

यदि मिथ्यात्व नामकी ( मोहनीय कर्मकी ) प्रकृति आत्मा  
को मिथ्यादृष्टि बनाती है—ऐसा माना जाये तो खेरे मत में अचेतन

प्रकृति (मिथ्यात्वभावकी) कर्ता हुई ! (इसलिये मिथ्यात्व भाव अचेतन सिद्ध हुआ । )” ( समयसार गाथा-३२८ )

“अथवा, यह जीव पुद्गल द्रव्यके मिथ्यात्वको करता है—ऐसा माना जाये तो पुद्गल द्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा !—जीव नहीं !”  
( गाथा ३२९ )

“अथवा यदि जीव और प्रकृति—दोनों पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्व भावरूप करते हैं—ऐसा माना जाये तो, जो दोनों द्वारा किया गया उसका फल दोनों भोगेंगे । ( गाथा ३३० )

“अथवा यदि पुद्गल द्रव्यको मिथ्यात्वभावरूप न तो प्रकृति करती है या न तो जीव करता है ( दोमेसे कोई नहीं करता ) —ऐसा माना जाये तो पुद्गलद्रव्य स्वभावसे ही मिथ्यात्वभावरूप सिद्ध होगा । वह क्या वास्तवमे मिथ्या नहीं है ?”  
( गाथा ३३१ )

११—जीवने ही अपनी अज्ञानतासे भूल की है, उसमे बेचारा कर्म क्या करे ? कहा है कि—

❀ “कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई,

अग्नि सहे घनघात लोहकी सगति पाई ।”

अर्थ—कर्म बेचारा कौन ? ( किस गिनतीमे ? ) भूल तो मेरी

\* “भद्राणामपि नश्यन्ति गुणा येषा ससर्ग खलैः ।

वैश्वानरो लोहेन मिलितं तेन पिष्टयते घनैः ॥ ११० ॥

अर्थ—दुष्टों (कर्म) के साथ जिनका सम्बन्ध है, उन भद्र (विवेकी) पुरुषोंके भी गुण नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि लोहेके साथ मिलती है तब वह धनोंसे पीटी जाती है—कूटी जाती है ।”

( देखो, परमात्म प्रकाश अ० २-श्लोक ११० )



ही बड़ी है । जिसप्रकार अग्नि लोहेकी संगति करती है तो उसे धनों के आघात सहना पड़ते हैं, ( उसीप्रकार यदि जीव कर्मोदयमें मूक्त हो तो उसे राग-द्व पादि विकार होते हैं )

१२—“... और तत्त्व निर्णय करनेमें कही कमका दोष तो है नहीं किन्तु तेरा ही दोष है । तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिकमें सगाता है । परन्तु जिन भाषा माने सो ऐसी समीति संभव न हो । तुझे विषय—रूपायक्य ही रहना है इसलिये झूठ बोलता है । यदि मोक्षकी सच्ची समिताया हो तो तू ऐसी मुक्ति क्यों बनाये ?—

(मोक्षमार्ग प्रकाशक अ० १ देहसीसे प्रकाशित पृष्ठ ४५८)

१३— कर्म कसु... स्वयमेव पटकारकीरूपेण व्यवतिष्ठमान न कारकान्तरमपेक्षते । एवं जीव.... स्वयमेव पटकारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकान्तरमपेक्षते । अतः कर्मणः कसु नास्ति जीवः कर्ता जीवस्य कसु नास्ति कर्म कसु निश्चयेनेति ।

अर्थ—कर्म वास्तव में ... स्वयं ही पटकारक रूप परिणमित होता है इसलिये अन्य कारकों ( अन्यके पटकारकों ) की अपेक्षा नहीं रखता । उसीप्रकार जीव... स्वयं ही पटकारकरूपसे परिणमित होता है इसलिये अन्यके पटकारकोंकी अपेक्षा नहीं रखता इसलिये निश्चयसे कर्मका कर्ता जीव नहीं है और जीवका कर्ता कर्म नहीं है ।

भावार्थ—निश्चयसे पुद्गल द्रव्य ज्ञानादिरादि कर्म योग्य पुद्गल स्कन्धोंरूप परिणमित होता है और जीव द्रव्य भी अपने भौतिकीदि भावोंरूपसे स्वयं परिणमित होता है । जीव और पुद्गल—दोनों एक—दूसरेके कर्तव्यकी अपेक्षा नहीं रखते ।

(—जी पंचास्तिकाय गाथा ६२ की संस्कृत टीका)

प्रश्न (३७२)—आत्मा अपनी योग्यतासे ही राग (विकार) करता है, —ऐसा माननेसे तो विकार आत्माका स्वभाव हो जायेगा, इसलिये रागादिक विकारको कर्मकृत मानना चाहिये—यह ठीक है ?

उत्तर—विकार आत्म द्रव्यका त्रिकाली स्वभाव नहीं है। किंतु क्षणिक योग्यतारूप पर्याय स्वभाव है। वर्तमान पर्यायमे स्वको चूककर परद्रव्यका अवलम्बन किया जाये तो पर्यायमे नया—नया विकार होता है; किंतु यदि स्वसन्मुखता की जाये तो वह दूर हो सकता है। जीव रागद्वेषरूप विकार पर्यायमे स्वयं करता है, इसलिये अशुद्ध निश्चयनयसे वह जीवका है। स्वभावमे विकार नहीं है। स्वभावमे लीन होनेसे वह विकार दूर हो जाता है। विकारी पर्याय अपनी है इसलिये निश्चय कहा है, लेकिन विकार अपना स्थायी और असली स्वरूप नहीं है इसलिये वह अशुद्ध है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनयसे वह जीवकृत है—ऐसा कहा है।

प्रश्न (३७३) कभी-कभी जीव पर जड कर्मका जोर बढ़ जाता है और कभी जड कर्म पर जीवका जोर बढ़ जाता है—यह ठीक है?

उत्तर—(१) नहीं, यह मान्यता यथार्थ नहीं है, क्योंकि जीव और जडकर्म—यह दो पदार्थ त्रिकाल भिन्न-भिन्न हैं, उनका परस्पर अत्यन्त अभाव है, इसलिये कोई किसो पर जोर नहीं चलाता। (२) जीव जब विपरीत पुरुषार्थ करे तब वह अपनी विपरीत वृत्तिको कर्ममे युक्त करता है, उस अपेक्षासे कर्मका जोर आरोपसे कहा जाता है, और जब जीव अपने योग्य स्वभावमे सावधान होकर सीधा पुरुषार्थ करता है तब वह अपना बल अपनेमे बढ़ाता हुआ, कर्मकी ओरकी वृत्ति क्रमशः छोड़ता जाता है, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि जीव बलवान हुआ।

(३) प्रत्येक द्रव्यका वस और शक्ति उसके स्वद्रव्यमें है। कर्म की शक्ति जीवमें नहीं आ सकती इसलिये कर्म जीवको कभी भी बाधित नहीं कर सकता।

प्रश्न (३७४)—इन्द्रियोंके विषय भी आत्माको सुख-दुःख नहीं दे सकते उसका कारण क्या ?

उत्तर—(१) 'स्पर्शनादिक इन्द्रियां जिनका आश्रय करती हैं—ऐसे दृष्ट विषयोंको प्राप्त करके (अपने अशुद्ध) स्वभावरूप परिणमित होता हुआ आत्मा स्वयमेव सुखरूप (इन्द्रिय सुखरूप) होता है देह सुखरूप नहीं होती है।

( श्री प्रवचनसार गाथा ६३ अन्वयार्थ )

(२) "सरीर सुख-दुःख नहीं करता। देवका उत्तम वैश्वविक सरीर सुखका कारण नहीं है या मारुतीका सरीर दुःखका कारण नहीं है। आत्मा स्वयं ही दृष्ट अनिष्ट विषयोंके बल होकर सुख-दुःखकी कल्पनात्मक परिणमित होता है।"

( श्री प्रवचनसार गाथा ६६ भावार्थ )

(३) 'संसारमें या मोक्षमें आत्मा अपने आप ही सुखरूप परिणमित होता है उसमें विषय अकिञ्चित्कर है अर्थात् कुछ नहीं करते। अज्ञानी जब विषयोंको सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवसम्बन्ध करते हैं।"

( श्री प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ )

(४) स्व-परके भेदज्ञानके अभावसे अज्ञानी जीव परमें (इन्द्रिय विषयोंमें) सुख-दुःखी मिथ्या कल्पना करके उनमें दृष्ट-अनिष्ट की बुद्धि करके अपनेको सुखी-दुःखी मानता है, किन्तु विषय तो बड़ हैं वे दृष्ट अनिष्ट हैं ही नहीं और वस्तुस्वभाव ही ऐसा

है कि एक द्रव्य दूसरेका कुछ नहीं कर सकता ।

(५) “ इसप्रकार पदार्थोंमें तो इष्ट-अनिष्टपना है नहीं । यदि पदार्थोंमें इष्ट-अनिष्टपना हो तो जो पदार्थ इष्टरूप हो वह सबको इष्टरूप ही होगा, और जो अनिष्टरूप हो वह सबको अनिष्टरूप ही होगा, किन्तु ऐसा तो नहीं होता, मात्र यह जीव स्वयं ही कल्पना करके उसे इष्ट-अनिष्टरूप मानता है, परन्तु वह कल्पना मिथ्या है ।”

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १५६ देहलीसे प्रकाशित)

प्रश्न (३७५)—क्या निमित्तके बलसे या प्रेरणासे कार्य होता है ?

उत्तर—(१) नहीं, बात यह है कि जिसप्रकार कोई भी कार्य अन्य-के आधीन नहीं है, और वह ( कार्य अन्यकी ) बुद्धि अथवा प्रयत्नके भी आधीन नहीं है, क्योंकि कार्य तो अपनी परिण-मन शक्तिसे ही होता है । यदि उसका बुद्धि और प्रयत्नके साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा मानता है कि यह कार्य बुद्धि और प्रयत्नसे हुआ है, और यदि उसका अन्य बाह्य निमित्तो-के साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा समझता है कि यह कार्य निमित्तसे हुआ है, परन्तु तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो प्रत्येक कार्य अपनी-अपनी योग्यतासे ही होता है, क्योंकि उसके अन्वय और व्यतिरेक भी उसके साथ होते हैं, इसलिये निमित्त-को किसी भी अवस्थामे प्रेरक-कारण मानना उचित नहीं है ।

[ प० श्री फूलचन्दजी सम्पादित, श्री तत्त्वार्थसूत्र पृष्ठ २५१ ]

(२) “जिसप्रकार शख परद्रव्यको भोगता-खाता है, फिर भी उसकी श्वेतता पर द्वारा कृष्ण नहीं की जासकती क्योंकि पर अर्थात् परद्रव्य किसी द्रव्यको परभावस्वरूप करनेका निमित्त

(निमित्त कारण) नहीं बन सकता..

( श्री समयसार गा० २२० से २२३ की पु० टीका )

प्रश्न (३७६)—ज्ञानी-धर्मात्मा पर जीवोंका भसा करनेके लिये उपदेश देते हैं—यह बिघान बराबर है ? -

उत्तर—नहीं यह बात बराबर नहीं है क्योंकि ज्ञानी जानते हैं कि कोई जीव पर आत्माका भसा बुझ नहीं कर सकता । सामने भासा जीव अपनी मोह्यतासे ( सत्य समझनेके प्रयत्न द्वारा ) समझे तो उपदेशको निमित्त कहा जाता है । ,

छद्मस्थ ज्ञानीको अपनी निर्बलताके कारण उपदेश देने का विकल्प चठता है और बाणी वाणीके कारण निकसती है उसमें उपदेशका विकल्प (राग) तो निमित्तमात्र है । ज्ञानी राग और वाणीका स्वामी नहीं है, किन्तु राग और वाणीका व्यवहारसे ज्ञाता है ।

प्रश्न (३७७) पुद्गल जीवको विकाररूप परिणमित कराता है—यह बात ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं 'ऐसा तो कभी नहीं होता क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिका कर्ता नहीं होता ।

—( आत्मावसोकल 'पू०-४६)

(२) 'कोई द्रव्य किसी द्रव्यको परिणमित नहीं करता क्योंकि कोई द्रव्य निःपरिणामी ( अपरिणामी ) नहीं है—सर्व द्रव्य परिणामी है—"

—(आत्मावसोकल पू०-७४)

प्रश्न (३७८)—'कोई ऐसा जानै कि बिबुविकाररूप तो जीव परिणमित होता है किन्तु ऐसा होनेमें ( परिणमित होनेमें ) पुद्ग

गल स्वय निमित्तकर्ता होता है, अर्थात् यह जीव विकाररूप परिणमित हो उसके लिये पुद्गल स्वय निमित्तकर्ता होकर वर्तता है—यह ठीक है ?”

उत्तर—नहीं; “ऐसा तो कभी नहीं हो सकता, क्योंकि—

(१) यदि पुद्गल वह चिद्विकार होनेमे जान-बूझकर स्वय कर्म निमित्तरूप हो, तो वह ज्ञानवन्त हुआ । वह तो अनर्थ उत्पन्न हुआ । जो अचेतन था वह चेतन होगया । यह एक दूषण ।

(२) यदि जीवको विकार होनेमे पुद्गल कर्मत्वरूपसे निमित्त होता ही रहे, तो यह दूषण उत्पन्न हो कि—कोई द्रव्य किसी द्रव्यका शत्रु नहीं है, तथापि यहाँ पुद्गल जीवका शत्रु हुआ ”

( आत्मावलोकन पृष्ठ ४६-४७ )



# प्रकरण छठवाँ

## उपादान-निमित्त अधिकार तथा निमित्त-नैमित्तिक अधिकार

प्रश्न (३७६)—कार्य किसप्रकार होता है ?

उत्तर— 'कारणानुविधायित्वादेव कार्याणि ।

( समयसार गाथा १३०-१३१ टीका )

'कारणानुविधायीनि कार्याणि ।' (समयसार गाथा १८ टीका)  
कारणका अनुसरण करके ही कार्य होते हैं । कार्यको कर्म  
अवस्था पर्याय शब्दों से दत्ता परिणाम और परिणति भी  
कहते हैं ।

( यही कारणको उपादान कारण समझना क्योंकि उपादान  
कारण ही सच्चा कारण है । )

प्रश्न (३८०)—कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—कार्य की उत्पादक सामग्रीको कारण कहते हैं ?

प्रश्न (३८१)—उत्पादक सामग्रीके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—उपादान और निमित्त । उपादानको निजसत्ति  
अथवा निदृश्य कहते हैं और निमित्तको परयोग अथवा व्यय  
हार कहते हैं ।

प्रश्न (३८२)—उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमित हो उसे उपादान

कारण कहते हैं, जैसे कि—घड़ेकी उत्पत्तिमें मिट्टी उसका त्रिकाली उपादान कारण है; ( द्रव्याधिक नयसे है । )

—(२) अनादिकालसे द्रव्यमे जो पर्यायोका प्रवाह चला आरहा है उसमे अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय उपादान कारण है और अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय कार्य है, जैसे कि—मिट्टीका घडा होनेमें मिट्टीका पिण्ड वह घड़ेकी अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय है और घडारूप कार्य वह पिण्डकी अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय है । अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय का व्यय वह क्षणिक उपादान कारण कहा जाता है । ( पर्यायाधिक नयसे है । )

(३) उस समयकी पर्यायकी योग्यता वह उपादान कारण है और वही पर्याय कार्य है । उपादान ही सच्चा ( वास्तविक ) कारण ( पर्यायाधिकनयसे ) है ।

[ आधार—ध्रुवउपादान तथा क्षणिकउपादानके लिये देखो—(१) अष्टसहस्री श्लोक ५८, टीका, पृष्ठ २१०, (२)

चिद्विलास पृष्ठ ३६, (३) ज्ञान दर्पण पृष्ठ २५-४०-५६ ]

प्रश्न (३८३)—योग्यता किसे कहते हैं ?

उत्तर—“योग्यतैव विषयप्रतिनियमकारणमिति”

( न्याय दीपिका, पृष्ठ २७ )

१—योग्यता ही विषयका प्रतिनियामक कारण है । [ यह कथन ज्ञानकी योग्यता ( सामर्थ्य ) को लेकर है, परन्तु योग्यताका कारणपना सर्वमे सर्वत्र समान है । ]

२—सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लियाकत, ताकत, योग्यता, शक्ति—यह “योग्यता” शब्दके अर्थ हैं ?

प्रश्न (३८४)—निमित्त कारण किसे कहते हैं ?



उत्तर—जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित न हो परन्तु कार्यकी उत्पत्तिमें अनुकूल होनेका निसपर आरोप भा सके उस पदार्थ को निमित्त कारण कहते हैं जैसे कि—पड़की उत्पत्तिमें कुम्भ कार, दंड चक्र आदि निमित्त कारण हैं । [ निमित्त सच्चा कारण नहीं है वह अकारणवत्—अहेतुवत् है, क्योंकि वह उपचारमात्र अथवा व्यवहार कारण है । ]

प्रश्न (२८१)—निमित्तकारणके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—(१) प्रेरक निमित्त और (२) उदासीन निमित्त ।

प्रश्न (३८६)—प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—गमन क्रियावासे जीव पुद्गल तथा इच्छादिवासे जीव प्रेरक निमित्त कहलाते हैं । प्रेरक निमित्त अथवा उपादानमें कार्य कर देते हैं या प्रमादादि ज्ञान सकते हैं—ऐसा नहीं समझना क्योंकि दोनों पदार्थोंका एक दूसरेमें सम्भाव है । प्रेरक निमित्त उपादानकी प्रेरणा नहीं करता ।

प्रश्न (३८७)—उदासीन निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाश और कामादि निष्क्रिय (गमन क्रिया रहित) या रागरहित द्रव्योंको उदासीन निमित्त कहते हैं ।

[ निमित्तोंके उपभेद बतानेके लिये किन्हीं निमित्तोंको प्रेरक और किन्हींको उदासीन कहा जाता है किन्तु सर्वप्रकार के निमित्त उपादानके लिये तो धर्मास्तिकायवत् उदासीन ही है । निमित्तान् मित्र—मित्र प्रकारोंका ज्ञान करनेके लिये ही उगने यह दो भ्रम किये गये हैं । ]

प्रश्न(३८८)—“कुम्हारने चाक, दड आदिसे घडा बनाया;’ उसमे घडारूप कार्यमे (१) त्रिकाली और क्षणिक उपादानकारण कौन हैं ? (२) उदासीन और प्रेरक निमित्त कौनसे हैं ?

उत्तर—(१) त्रिकाली उपादान कारण मिट्टी, और घडारूप कार्य की अनंतर पूर्ववर्ती पर्याय—मिट्टीके पिण्डका अभाव (व्यय) तथा घडारूप होनेकी वर्तमान पर्यायकी योग्यता—यह दोनो क्षणिक उपादान हैं ?

(२) घडा बनानेके रागवाला कुम्हार और क्रियावान् चाक, दडादि प्रेरक निमित्त हैं ।

चाककी कीली, काल, आकाश, धर्म अधर्म आदि उदासीन निमित्त हैं, क्योंकि वे गमनक्रिया रहित और राग (इच्छा) रहित हैं ।

प्रश्न (३८९)—उदासीन निमित्त उपादानमे कुछ नहीं कर सकते, परन्तु प्रेरक निमित्त तो कुछ कार्य प्रभाव असर तो करते होंगे ?

उत्तर—नहीं, उदासीन या प्रेरक निमित्त उपादानमे कुछ करते ही नहीं क्योंकि परके लिये सभी निमित्त उदासीन ही हैं । श्री पूज्यपाद आचार्य इष्टोपदेश की ३५ वी गाथा मे कहते हैं कि—

“नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।

निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्” ॥३५॥

अर्थ—अज्ञानी विशेष प्रकारके ज्ञान भावको प्राप्त नहीं करता और विशेष ज्ञानी अज्ञानपनेको प्राप्त कही करता । गतिको जिस-प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त है उसी प्रकार अन्य तो निमित्तमात्र है ।

भावार्थ—“तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिके लिये अयोग्य अभव्यादि

बीज धर्माचार्यादिकोंके हथारों उपदेखोंसे भी उत्पन्नान प्राप्त नहीं कर सकते ।

॥कार्यकी उत्पत्ति करनेके लिये कोई भी प्रयत्न स्वाभाविक भुण्णकी अपेक्षा करता रहता है । सैकड़ों व्यापारोंसे ( प्रयत्नोंसे ) भी बगुनेको धोतेकी भाँति नहीं पक़ाय़ा जा सकता ।

सहाँ धंका यह होती है कि-ऐसे तो बाह्य निमित्तोंका निराकरण ही हो जायेगा । इस विषयमें उत्तर यह है कि-अन्य जो मुक्त भाविक तथा शत्रु आदिक हैं वे प्रकृत कार्यके उत्पादनमें तथा विघ्न सन (माघ) में सिर्फ़ निमित्तमात्र हैं । वास्तवमें कोई कार्य होने में या बिगड़नेमें उसकी योग्यता ही साम्राट् साक्ष्य होती है

( परम श्रुतप्रभावक मंडल मु बईसे प्रकाशित—इष्टोपदेश गाथा ३५ की टीका—पृष्ठ ४२-४३ )

प्रश्न (३६०)—कभी-कभी प्रेरक निमित्त जैसे कि शीघ्र गति करती मोटर ट्रेन भादि द्वारा अनिच्छित स्थानमें गति भादि देखे जाते हैं इसलिये उपादानको प्रेरक निमित्तोंके आधीन परिणमित होना पड़ता है—यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं किसी भी प्रेरक निमित्तोंके आधीन उपादानको परिणमित होगा पड़ता है—ऐसा नहीं है परन्तु इतना निश्चित होता है कि—गति क्रिया जीवकी इच्छानुसार नहीं हो सकी । वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो शरीर और जीवकी क्रियावती शक्तिकी उस समयकी योग्यता ही बसी थी इसलिये तदनुसार गति हुई ।

प्रश्न (३६१)—शीघ्र गति करती मोटरादि ठो वस्तुमें निमित्तमात्र हैं

किन्तु पुद्गल कर्म, मन वचन काय, इन्द्रियोका भोग, धन, परिजन, मकान इत्यादि जीवको राग-द्वेषरूप परिणाम करने में प्रेरक हैं ?

उत्तर—छहो द्रव्य सर्व—अपने—अपने स्वरूपसे सदैव असहाय ( स्व-तत्र ) परिणमन करते हैं, कोई द्रव्य किसीका प्रेरक कभी नहीं है, इसलिये कोई भी परद्रव्य रागद्वेषका प्रेरक नहीं है; परन्तु जीवका मिथ्यात्व मोहरूप भाव है वही (अनन्तानुबन्धी) राग-द्वेषका कारण है ।

[ देखो, प्रकरण ५, प्रश्न ३७१ का उत्तर ]

प्रश्न (३६२)—पुद्गलकर्मकी बलजवरीसे जीवको राग-द्वेष करना पड़ता है, पुद्गलद्रव्य कर्मोंका वेप धारण करके जहाँ—जहाँ बल करता है वहाँ—वहाँ जीवको राग-द्वेष अधिक होते हैं—यह बात सत्य है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जगतमें पुद्गलका सग तो सदैव रहता है । यदि उसकी बलजवरीसे जीवको रागादि विकार हो, तो शुद्ध भावरूप होनेका कभी अवसर ही नहीं आ सकेगा, इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि शुद्ध या अशुद्ध परिणमन करनेमें चेतन स्वयं समर्थ है ।

(समयसार नाटक सर्व विशुद्ध द्वार, कवित्त ६१ से ६६)

प्रश्न (३६३)—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जब उपादान स्वयं स्वतः कार्यरूप परिणमित होता है तब भावरूप या अभावरूप किस उचित (योग्य) निमित्तकारणका उसके साथ सम्बन्ध है वह बतलानेके लिये उस कार्यको

नैमित्तिक कहते हैं। इसप्रकार निमित्त-निमित्त पदार्थोंके स्वतंत्र सम्बन्धको निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध परस्परकी परस्परताका सूचक नहीं है परन्तु नैमित्तिकके साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है उसका वह ज्ञान कराता है।

जिस कार्यको निमित्तकी अपेक्षासे नैमित्तिक कहा है उसे अपने उपादानकी अपेक्षासे उपादेय भी कहते हैं।

(१) निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध दोनों स्वतंत्र पदार्थोंके बीच होता है।

(२) निमित्त और नैमित्तिकका स्वचतुष्य ( द्रव्य-बोध-कास-भाव ) निमित्त-निमित्त है।

(३) उपादान-उपादेय सम्बन्ध एकही पदार्थको लागू होता है

(४) कार्यकी निमित्त द्वारा पहिचान कराते हुए वह नैमित्तिक कहलाता है और उसी कार्यकी उपादान द्वारा पहिचान कराते हुए वह उपादेय कहलाता है।

प्रश्न (३६४) प्रेरक निमित्त और उदासीन निमित्तके वृक्षान्त दीजिये।

उत्तर—(१) घटकी उत्पत्तिमें दह चक्र, कुम्हारका प्रेरक निमित्त है क्योंकि दह चक्र, और कुम्हारका हाथ गतिमान है और कुम्हार उस समय बड़ा बनानेकी इच्छावासा है धर्मास्तिकाय और चक्रको घूमनेकी धुरी—वे उदासीन निमित्त है परन्तु वे सभी निमित्त मिट्टीरूप उपादानके प्रति ( धर्मास्तिकायवत् ) उदासीन कारण हैं।

(२) कोई मनुष्य जोड़ पर बैठकर बाहर गाँव जाता है उसमें जोड़ा गतिमान होनेसे प्रेरक निमित्त है और धर्मास्तिकाय

उदासीन निमित्त है, परन्तु वे निमित्त उपादानरूप सवागे करनेवाले मनुष्यके प्रति (धर्मास्तिकायवत्) उदासीन कारण हैं।

[ जो प्रेरक निमित्त कारण हैं वे गति या इच्छापना वतलानेके लिये प्रेरणा करते हैं—ऐसा व्यवहारनयसे कहा जाता है, किन्तु वास्तवमे किसी द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायको प्रेरक नहीं हो सकती। ]

प्रश्न (३६५)—भावरूप निमित्त और अभावरूप निमित्तके दृष्टान्त दीजिये।

उत्तर—(१) जिमप्रकार उत्तरग (तरगे उठनेवाली) और निस्तरग (तरग रहित) दशाओको वायुका चलना या न चलना निमित्त होने पर भी वायु और समुद्रमे व्याप्यव्यापक भावके अभावके कारण कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि होनेसे, समुद्र ही स्वय अन्तर्व्यापक होकर उत्तरग अथवा निस्तरग अवस्थामे आदि—मध्य—अन्तमे व्याप्त होकर उत्तरग अथवा निस्तरग ऐसा अपने को करता हुआ अपने एकको ही करता प्रतिभासित होता है, परन्तु अन्यको करता प्रतिभासित नहीं होता ”

(२) “ उसीप्रकार ससार और नि ससार अवस्थाओको पुद्गलकर्मके विपाकका सभव ( उत्पत्ति ) और असभव निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीवके बीच व्याप्यव्यापक भावका अभाव होनेके कारण कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि होनेसे जीव ही स्वय अन्तर्व्यापक होकर ससार अथवा नि ससार अवस्थामे आदि—मध्य—अन्तमे व्याप्त होकर अपनेको सससार या नि ससार करता हुआ, अपने एकको ही करता हुआ प्रतिभा-

सिद्ध हो परन्तु ग्रन्थको करता प्रतिमासिद्ध न हो.. ”

( श्री समयसार गाथा ८३ की टीका )

[ बुद्धान्तर्मे—बायुका जसना वह सवुभावस्व निमिरा है  
और न जसना वह अभावस्व निमिरा है ।

सिद्धास्तर्मे—पुद्गलकर्मके विपाकका संभव वह सवुभावस्व  
निमिरा है और उनका असंभव वह अभावस्व निमिरा है । ]

प्रश्न ( ३२६ )—कर्मके उदयसे जीवमें सञ्जमुच विकार भाव होता  
है—यह विधान ठीक है ?

उत्तर—( १ ) नहीं क्योंकि—‘जीवमें होनेवाले विकारभाव वह स्वयं  
करता है तब कर्मका उदय निमित्त है किन्तु उक्त कर्मके रज  
कर्मोमे जीवको कुछ भी किया या ससपर अर्सर—(प्रभाव)  
बाला—ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है (उसीप्रकार जीव विकार  
करता है तब पुद्गल—कार्माणवर्मेना स्वयं कर्मस्व परिणमित  
होती है—ऐसा निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध है ।) जीवको विका  
रीरूपसे कर्मका उदय परिणमाता है और नवीन कर्मोंको जीव  
परिणमाता है यह निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध बतसानेवासा  
व्यवहार कथन है । वास्तवमें जीव जबको कर्मस्व परिणमित  
नहीं कर सकता और कर्म जीवको विकारी नहीं कर सकता  
ऐसा समझना । गोप्पटभारादि कर्म धारणोंके इसप्रकार धर्म  
करना ही न्यायसंगत है ।

( स्वा० मंदिर दृष्टसे प्रकाशित हिन्दी भावुति मोक्षसास्त्र

—अ० १ परि १ पृष्ठ १४५ )

( २ ) कर्मके उदयसे जीवको विकार होता है—ऐसी साम्यता  
असंभव है । श्री दीपचन्द्रजीकृत ‘भारतमावजोक्त’ पृष्ठ १४३  
में कहा है कि—

“हे मित्र अन्यलोक, स्वाग ( पुद्गलकर्म ), स्कन्ध, परज्ञेय द्रव्योका दोष न देख और ऐसा न जान कि “परज्ञेयकी सनिधि ( निकटता ) निमित्तमात्र देखकर उसने ( निमित्तने ) मेरा द्रव्य मलिन ( विकारयुक्त ) किया ।” जीव स्वयं ऐसा भूठा भ्रम करता है, परन्तु उन परज्ञेयोसे कभी तेरी भेंट ( स्पर्श ) भी नहीं हुई है, तथापि तू उनका दोष देखता है—जानता है यह तेरा हरामजादीपना है । एक तू उनका ही भूठा है, उनका कोई दोष नहीं है, वे तो सदैव सच्चे हैं ।”

प्रश्न (३६७)—जब कर्मोंका तीव्र उदय हो तब पुरुषार्थ नहीं हो सकता, ऊपरी गुणस्थानोसे भी जीव नीचे गिर जाता है—ऐसे कथनका क्या अर्थ है ?

उत्तर—(१) यह व्यवहारनयका कथन है । जीवमे ऐसी योग्यता हो तब कैसा निमित्त होता है उसका ज्ञान करानेके लिये वह कथन है ।

(२) जीव जब स्वयं अपने विपरीत पुरुषार्थसे तीव्र दोष करता है तभी कर्मके उदयको तीव्र उदय कहा जाता है, किन्तु यदि जीव यथार्थ पुरुषार्थ करे तो कर्मका चाहे जैसा उदय होने पर भी उसे निर्जरा कहा जाता है । कर्मोदयके कारण जीव गिरता ही नहीं ।

(३) प्रवचनसार गाथा ४५की टीकामे श्रीजयसेनाचार्य कहते हैं कि—“द्रव्यमोहका उदय होनेपर भी यदि शुद्ध आत्मभावनाके बलसे मोहभावरूप परिणमित न हो तो बन्ध नहीं होता । पुनश्च, कर्मके उदय मात्रसे बन्ध नहीं होता, यदि उदयमात्रसे बन्ध होता हो तो संसारीको सर्वदा ही कर्मका उदय विद्यमान होनेसे सदैव ही बन्ध होता रहेगा, मोक्ष कभी होगा ही नहीं ।”



(४) "इत्यकर्मकम् प्रत्ययौ"  
 पर भी यदि बीच एतद्विचल  
 एतादिके अन्तर्गत इत्यकर्मकम्  
 तो सर्वथा कर्मक फल ही  
 कर्मोक्त विधानाल होना है ।  
 ("वैवाहिकम्" वात्वा १४६)

अल (१६५)—परिचयार्थ (कर्मिण)  
 दोनों कारण होती हैं, तो कर्म  
 कितना ?

उत्तर—(१) कार्य होनेसे पूर्व किसीको किन्हीं निमित्तों के  
 कार्यकारणों को उचित (समस्त) निमित्तों के कारणों के  
 हो उसे निमित्त कारण कहते हैं ।

उपादानके बिना परको कार्यका निमित्त वा  
 सकता निमित्त तो मात्र किन्हीं उपस्थितियों के बिना वह  
 बतलानेवाला व्यर्थ है ।

(वैवाहिकी नाम २ वात्वा १४६ के आधारों)

(२) निमित्त तो सामीप्य है किन्हीं प्रकार के परिवर्तन (सो-  
 पहरके समय बिलने वाला) पूर को निकालकर होने के  
 हरके पूर्वका होना सामीप्य अथवा अन्तर्गत है ।  
 (भारतप्रयोग, १४६)

(३) निमित्त परवस्तु है । उपादानको कर्मिण होनेसे उत्पत्ती  
 आवश्यकता होती है या नहीं—यह प्रश्न ही नहीं उत्पन्न क्योंकि  
 जब निश्चय कारण—उपादानके कार्यजन निमित्त होनेका कार्य  
 होता है तब निमित्तकी उपस्थिति स्वयमेव होती है, वह नहीं

ऐसा कभी नहीं होता ।

—इस विषयमें श्री ५० फूलचन्दजी सम्पादित तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३० की टीका, पृष्ठ २५२ में कहा है कि—

“ वे ( निमित्त ) हैं अत माने गये हैं, इसलिये उनकी आवश्यकता और अनावश्यकताका तो प्रश्न नहीं उठता ।”

प्रश्न (३६६)—देह, इन्द्रिय और पाँच इन्द्रियोके विषयोके निकट रहनेसे ही मनुष्योको ज्ञान और सुख होता है, इसलिये वे देहादि पदार्थ ज्ञान और सुखके लिये अकिञ्चित्कर कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—(१) उपादान कारणके आश्रयसे—सामर्थ्यसे ही निमित्त को हेतु कहा जाता है, किन्तु उपादानके बिना परको कार्यका निमित्त नहीं कहा जा सकता । निमित्त तो मात्र किस उपादान ने कार्य किया उसे बतलाने वाला (अभिव्यजक) है ।

(देखो, पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५८ के आधारसे)

(२) “उपरोक्त कथनका साधक दृष्टान्त यह है कि अग्नि अगर (चन्दन) द्रव्यकी गन्धका व्यजक होता है — — —”

( पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५९ )

(३) “उसीप्रकार यद्यपि देह इन्द्रिय और उनके विषय किसी स्थान पर ज्ञान और सुखके अभिव्यजक होने हैं, किन्तु वे स्वयं ज्ञान और सुखरूप नहीं हो सकते ।”

( पचाध्यायी भाग २, गाथा ३६० )

(४) “ जहाँ आत्मा स्वयं सुखरूप परिणमित होता है वहाँ विषय क्या करते हैं ? ( प्रवचनसार गाथा ६७ )

(५) “अन्य द्रव्यसे अन्यद्रव्यके गुणकी उत्पत्ति नहीं की जा सकती,

इसलिये (यह सिद्धान्त है कि) सर्व,  
उत्पन्न होते हैं।”

इससे सिद्ध होता है कि  
सुख होनेमें चरीर-इन्द्रियाँ

निमित्त कारण यह कथ्यमान है कि  
नहीं है। सच्चा कारण तो

कथन दो प्रकारसे है—  
कारण ही सच्चा कारण है,

पदार्थका ज्ञान करकेके लिये ही <sup>कथ्यमान है कि</sup>

प्रश्न (४००)—बीजको संसार कथानें तो विषय <sup>कथ्यमान है कि</sup>  
उत्पन्न करते हैं न ?

उत्तर—(१) “नहीं बीज संसार बीज बीज <sup>कथ्यमान है कि</sup>  
ज्ञानादि स्वकथमाना ही है, इसलिये यह बात <sup>कथ्यमान है कि</sup>  
अथवा सुखमय होता है।” (पञ्चाध्यायी भाष्य ३२२)  
(२) ‘मतिज्ञानादिके समये बीज ही-स्वकथाने विषयोंकी  
विषय करके स्वयं ही उस ज्ञान और सुखमय ही बात है,  
इसलिये आत्माको उस ज्ञान तथा सुखमें वे लगे रहें (यह)  
स्पर्शादि पदार्थ क्या कर सकते हैं ?

—( पञ्चाध्यायी भाष्य २, वाचा ३२३ )

(३) “मतिज्ञानादिके उत्पत्ति समये आत्मा ही <sup>कथ्यमान है कि</sup>  
है, तथा वेह-इन्द्रियाँ और उनके विषयकृत पदार्थ ही <sup>कथ्यमान है कि</sup>  
हेतु हैं, इसलिये वे प्रहेतु समान ( प्रहेतुत्व ) हैं।

( पञ्चाध्यायी भाष्य २, वाचा ३२३ )

(४) यदि स्पर्शादि विषय स्वयं-स्वयं ज्ञानको उत्पन्न <sup>कथ्यमान है कि</sup>

हो तो उन ज्ञानशून्य घटादिकमें भी वे ज्ञान वषो उत्पन्न नहीं करते ?

( पचाध्यायी भाग २, गा० ३५४ )

(५) यदि ऐसा कहा जाये कि चेतन द्रव्यमें ही किनी जगह वे स्पर्शादिक पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न करते हैं, किन्तु यदि आत्मा स्वयं चेतन है तो फिर अचेतन पदार्थोंने उनमें क्या उत्पन्न किया ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

( देखो, पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५५ )

(६) इसलिये ऐसा निश्चित होता है कि आत्माको ज्ञान और मुख उत्पन्न करने में शरीर, पाँचों इन्द्रियाँ तथा उनके विषयो का अकिञ्चित्करण है ।

( देखो, पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५६ )

[ ' जो हेतु कुछ भी न करे वह अकिञ्चित्कर कहलाता है ।' ]

( समयमार गाथा २६७ का भावार्थ पृष्ठ ३२८ )

प्रश्न (४०१)—अतरग कारणसे ( उपादान कारणसे ) ही कार्यकी उत्पत्ति होती है—ऐसा न माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—(१) कार्यकी उत्पत्तिमें स्वस्थिति कारण होती है, उसमें अन्य हेतु ( कारण ) नहीं है । फिर भी “कोई हेतु” है, ऐसा माना जाये तो अनवस्थाका दोष आयेगा ।

( पचाध्यायी भाग २, गाथा ७६६, पृ० २७६  
प० फूलचन्दजी द्वारा संपादित )

(२) “यहाँ मित्र द्वैत से एक उपादान और दूसरा सहकारी कारण लिया गया है. वस्तुमें कार्यकारीपनेकी योग्यता अन्यवस्तुके निमित्तसे नहीं आती यह तो उसका स्वभाव है ।



अर्थ—यहाँ ऐसी शका होती है कि—इसप्रकार तो बाह्य निमित्तों का निराकरण ही हो जायेगा । उसका उत्तर यह है कि—अन्य जो गुरु, शत्रु आदि हैं वे प्रकृत कार्यके उत्पादनमें या विध्वंसमें सिर्फ निमित्तमात्र हैं । वहाँ योग्यतामें ही साक्षात् साधकपता है ।

(२) “वैभाविक परिणमन निमित्त सापेक्ष होकर भी वह अपनी इस कालमें प्रगट होनेवाली योग्यतानुसार ही है ।

अपनी योग्यतावश ही जीव ससारी है और अपनी योग्यतावश ही वह मुक्त होता है । जैसे परिणमन का साधारण कारण होते हुए भी द्रव्य अपने उत्पादव्ययस्वभावके कारण ही परिणमन करता है । काल उसका कुछ प्रेरक नहीं है । आगम में निमित्त विशेषका ज्ञान करानेके लिये ही कर्मका उल्लेख किया गया है । उसे कुछ प्रेरक कारण नहीं मानना चाहिये । जीव पराधीन है यह कथन निमित्त विशेषका ज्ञान करानेके लिये ही किया जाता है । तत्त्वतः प्रत्येक परिणमन होता है अपनी योग्यतानुसार ही ।”

( श्री ५० फूलचन्दजी सम्पादित “पचाध्यायी”  
गा० ६१ से ७० का विशेषार्थ, पृष्ठ १६३ )

(३) श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५८० की संस्कृत टीका के श्लोकमें कहा है कि—

निमित्तातर तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।

यहिर्निश्चयकालस्तु निश्चित तत्त्वदर्शिभिः ॥१॥

अर्थ—“उस वस्तुमें विद्यमान परिणमनरूप जो योग्यता वह



प्रश्न (४०३)—निमित्तको वास्तवमे अकिंचित्कर क्यो कहा ?

उत्तर—(१) “ससारमे या मोक्षमे आत्मा अपने आप सुखरूप परिणमित होता है; उसमे विषय अकिंचित्कर हैं अर्थात् कुछ नही करते । अज्ञानी लोग विषयोको सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन करते हैं ।”—(प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ ) (२) “जो हेतु कुछ भी न करे वह अकिंचित्कर कहलाता है । ( देखो, श्री समयसार गाथा २६७ की टीका ) एक द्रव्यका व्यापार दूसरे द्रव्यमे होता ही नही । उक्त कथन से सिद्ध होता है कि आत्माको इन्द्रियजन्य ज्ञान और सुख होने मे शरीर, इन्द्रियाँ तथा उनके विषय अनुत्पादक होनेसे अकिंचित्कर है...”

—( पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५६ का भावार्थ )  
(३) “तत्त्वदृष्टिमे देखने पर राग-द्वेषको उत्पन्न करनेवाला अन्य द्रव्य जरा भी ( किंचनापि ) दिखलाई नही देता ।”

—( श्री समयसार कलश २१६ )  
(४) “इस आत्मामे जो रागद्वेषरूप दोषो की उत्पत्ति होती है वहाँ पर द्रव्योका कुछ भी दोष नही है, वहाँ तो स्वयं अपराधी ऐसा यह अज्ञान ही फैलना है ”

—( श्री समयसार कलश २२० )  
(५) “ इसप्रकार अपने स्वरूपसे ही जानने वाले ऐसे आत्मा को अपन-अपने स्वभावसे ही परिणमित होनेवाले शब्दादिक किंचित्मात्र भी विकार नही करते, जिसप्रकार अपने स्वरूपसे ही प्रकाशित ऐसे दीपकको घटपटादि पदार्थ विकार नही करते उसी प्रकार । ऐसा वस्तु स्वभाव है, तथापि जीव शब्दको



(६) "वस्तुस्वभावः परस्मै

सकृता इत्यसिद्धे, तथा कस्तुतस्मात्पुनरप्यसिद्धः

इत्यसिद्धे आत्मा विद्यमानः प्रकृतः कस्तुतस्मात्पुनरप्यसिद्धः (अपने स्वरूपसे ही बालक है) । यही अन्तरात्मा कस्तुतस्मात्पुनरप्यसिद्धः समीपतामें भी अपने स्वरूपसे ही बालक है । अन्तरात्मा (अपने स्वरूपसे ही बालक बाले कृत (कालनेही) । वस्तुस्वभाव से ही विविध परिणतिको प्राप्त देखे नये। अन्तरात्मा कस्तुतस्मात्पुनरप्यसिद्धः सम्बाधि बाह्य पदार्थ किंचित् विविधा उत्पन्न नहीं करता ।"

(—भी समयसार नामा ३७१ के प्रमाणों की टीका )

प्रश्न (४०४)—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कब कहा जाता है ?

उत्तर—जिस समय वस्तु कार्यरूप परिणमित हो धर्मात् उपादानमें कार्य हो उसी समय संबोधक परवस्तुको निमित्त कहा जाता है । यदि कार्य न हो तो किसी सामग्रीको निमित्तकारण नहीं कहा जाता क्योंकि कार्य होनेसे पूर्व निमित्त किन्तु कार्य-कारणका समय एक ही होता है । निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समयकी वर्तमान पर्यायमें ही होता है ।

प्रश्न (४०५)—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कबाल्प देकर कहा जाता है ।

उत्तर—(१) कैवल्यकाल नैमित्तिक है और लोकालोककाल सम्बन्ध दोन निमित्त हैं । [ अवलोकनार नामा २९ की टीका ]

[२] सम्यग्दर्शन नैमित्तिक है और सम्यग्ज्ञानीके उपदेशादि निमित्त है । —[आत्मानुशासन गाथा १० की टीका]

[३] सिद्धदशा नैमित्तिक है और पुद्गल कर्मका अभाव निमित्त है । —[समयसार गाथा ८३ की टीका]

[४] “जिस प्रकार अध कर्मसे उत्पन्न हुआ और उद्देशसे उत्पन्न हुआ ऐसा जो निमित्तभूत [आहारादि] पुद्गल द्रव्यका प्रत्याख्यान [त्याग] न करता हुआ आत्मा [मुनि] नैमित्तिक-भूत बन्ध साधक भावका प्रत्याख्यान नहीं करता, उसीप्रकार समस्त पर द्रव्योका प्रत्याख्यान न करता हुआ आत्मा उसके निमित्तसे होने वाले भावोको नहीं त्यागता ।”

[ समयसार गाथा २८६—८७ की टीका ]

इसमें बन्ध साधक भाव नैमित्तिक है और अध कर्म तथा उद्देशिक आहारादि परद्रव्य निमित्त हैं ।

१—“जिस पापकर्मसे आहार उत्पन्न होता है उस पापकर्मको अयःकर्म कहा जाता है तथा उम आहारको भी अध कर्म कहा है । जो आहार ग्रहण करनेवालेके निमित्तसे ही बनाया गया हो उसे उद्देशिक कहा जाता है । ऐसे आहार (अध कर्म और उद्देशिक ) के निमित्तसे आत्माके जो भाव होते हैं वे नैमित्तिक बन्धसाधक भाव हैं ।

२—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध मात्र कर्म और जीवके बीच ही होता है यह बात यथार्थ नहीं है; कारण बतलाना हो तब उपादानकारण और निमित्त कारण कहे जाते हैं ।

३—निमित्त कारण और उसके साथका सम्बन्ध बतलाना हो

तब उपादानका धर्म ( निमित्त  
जाता है ।

प्रश्न (४०९)—“बुद्ध उपदेसक निमित्त निमित्त,  
ज्यों कर बुद्धे ज्यों निमित्त,

धर्म—बुद्धके उपदेसक निमित्त निमित्त  
बलहीन है ( क्योंकि ) बुद्धरे नीतिके बिना अनुष्णः

[ यह माम्बता बराबर नहीं है ?—देखा किम्बन्धन मन्त्र है । ]  
उत्तर—यह माम्बता बराबर नहीं है—देखा कसबके, केने की बुद्ध  
होइसे उत्तर देते हैं कि—

( १ ) “ज्ञान मेन किरिवा वरन बोळ विचमन चार,  
उपादान निहूँ वहाँ तहाँ निमित्त बोझार

( वनाके निमित्त )

धर्म—सम्बन्धन-ज्ञानक मेन और निचरताके कारण ( क्योंकि  
नीलताक निमित्त )—यह दोनों मिलकर मोक्षकारी जाती । वहाँ उपा-  
दानक निमित्त कारण होता है वहाँ निमित्तक उपकार कारण  
होता ही है ।

वाचार्थ—उपादान तो निमित्त धर्मात् उपाकारण है, निमित्त  
तो मात्र व्यवहार धर्मात् उपकार कारण है उपाकारण ही है  
इसीलिये तो उसे धर्मात् ( धर्मेण ) कहा है । निमित्त उपकार  
( आरोपित ) कारण इसलिये कहा है कि वह धर्मात् का कुछ  
कार्य करता-करता नहीं है तबानि धर्मात् के कारण उपकार अनुष्णता  
का आरोप जाता है इसकारण उसे उपकारण कहा है ।

[ सम्बन्धन और निचरताके नीलताके मोक्षकारी कारण-देखा ]

कहा उसमे शरीराश्रित उपदेश, उपवासादिक क्रिया और शुभराग-  
रूप व्यवहारको मोक्षमार्ग न जानो यह बात आ जाती है । ]

(२) 'उपादान निजगुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय,  
भेदज्ञान परवान विधि, विरला बूझे कोय ।'

( बनारसी विलास )

अर्थ —जहाँ निजशक्तिरूप उपादान हो वहाँ पर निमित्त  
होता ही है । उसके द्वारा भेदज्ञान प्रमाणकी विधि ( व्यवस्था )  
है । यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते है ।

भावार्थ —जहाँ उपादानकी योग्यता हो वहाँ नियमसे  
निमित्त होता ही है । निमित्तकी प्रतीक्षा करना पडे ऐसा नहीं  
होता, और निमित्तको हम जुटा सकते है—ऐसा भी नहीं होता ।  
निमित्तकी प्रतीक्षा करनी पडती है या उसे मैं ला सकता हूँ—ऐसी  
मान्यता परपदार्थ मे अभेदबुद्धि अर्थात् अज्ञानसूचक है । उपादान  
और निमित्त दोनों असहायरूप स्वतंत्र हैं यह उनकी मर्यादा है ।

(३) "उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्तको दाव,  
एक चक्र सौ रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ।"

( बनारसी विलास )

अर्थ —जहाँ देखो वहाँ उपादानका ही बल है,, ( निमित्त  
होता है ) परन्तु निमित्तका ( कार्य करनेमे ) कोई भी दाव (बल)  
नहीं है । एक चक्रसे रवि ( सूर्य ) का रथ चलता है वह उसका  
स्वभाव है ।

[ उसीप्रकार प्रत्येक कार्य उपादानकी योग्यतासे  
( सामर्थ्यसे ) ही होता है । ]

प्रश्न (४०७)—"हौं जानै था एक ही, उपादान सो काज,  
थकै सहाई पौन बिन, पानी माँहि जहाज ।"

( बनारसी विलास )

धर्म—कैसे उपासनाही करने होता

कहा कि कहाव वाली में क्यों नहीं

उत्तर—(१) 'तब वस्तु

धर्म—वहाँ प्रत्येक

( कार्यको ) प्राप्त करता है वहाँ विधि

कहाव प्रमाणों वहाँ ही बिना कल्पने के

माधव—बीच और प्रमाणों के बिना ही स्वतन्त्र रूप से ही कल्पने में परिचय प्रती है । स्वतन्त्र रूप से विविधतापूर्ण होकर परिचय करता है । उसे जातीय नहीं कर सकता ।

(२) "उपासना विधि निर्बन्ध है निमित्त प्रमाणों

वसे तु वैसे देखने करे तु वैसे

विशेषार्थ—उपासनाका कल्प निर्बन्ध ( कल्प एक 'बोम्बता' द्वारा ही होता है ) है । उपासना कभी बोम्बताके अनेक प्रकारसे परिचय करता है । उस उपनिषद् निमित्त पर विधि-विश्व कारणनेका आरोप (—येव ) जाता है । उपासनाकी विधि निर्बन्ध होनेसे निमित्त द्वारा वह कार्य हुआ—देवा कल्पद्वारा जाता है ।

माधव—उपासना अब वैसे कार्य करता है । कल्पनेका आरोप ( येव ) निमित्त पर जाता है ; किन्तु—कोई ब्रह्मकायवान् मनुष्य मालमें नरकमण्डलें होकर निकल कर बारव करता है । या ब्रह्मकाय पर नरकके कारणनेका आरोप जाता है, और यदि बीच मोलके बोम्ब निर्बन्ध कल्प करता है तो उस ब्रह्मकाय पर मोलकारणनेका आरोप जाता है ।—इसप्रकार उपासना

कार्य अनुसार निमित्तमे कारणपनेका भिन्न-भिन्न आरोप किया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्तसे कार्य नहीं होता परन्तु कथन होता है, इसलिये उपादान सच्चा कारण है और निमित्त आरोपित कारण है।

वास्तवमे तो, निमित्त ऐसा प्रसिद्ध करता है कि—नैमित्तिक स्वतंत्र अपने कारणसे परिणमन कर रहा है, तो उपस्थित दूसरी अनुकूल वस्तुको निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न (४०८)—निमित्तके बिना कार्य होता है ?

उत्तर—(१) निश्चयसे तो निमित्तके बिना ही सर्वत्र स्वयं उपादान की योग्यतासे ही कार्य होता है, उस काल उचित निमित्त होता है यह व्यवहार कथन है।

नियम ऐसा है कि—निश्चयसे उपादानके बिना कोई कार्य नहीं होता। कार्य वह पर्याय है और निश्चयसे वह परसे ( निमित्तसे ) निरपेक्ष होती है।

[देखो, १—समयसार गाथा ३०८ से ११ तथा उसकी संस्कृत टीका। २—पञ्चास्तिकाय गाथा ६२ स० टीका। ३—बनारसीदासजी के उपादान—निमित्त दोहे, नम्बर ४-५-६। ४—प्रवचनसार गाथा १०० की जयसेनाचार्यकृत टीका अध्याय २, गाथा ८, पृष्ठ १३६, तथा प्रवचनसार गाथा १६० और उसकी अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका]

( २ ) निमित्त व्यवहारकारण है—ऐसा न माननेवालेको “निमित्तके बिना कार्य नहीं होता”—ऐसा बतलाया जाता है, किन्तु व्यवहारके कथनोको निश्चयके कथन समझना वह भूल है।

[ देखो, समयसार गाथा ३२४-३२७ तथा टीका ]  
३—ऐसा नहीं है कि कभी कार्यके लिये निमित्तकी प्रतीक्षा करना पड़े, अथवा निमित्त मिलाना पड़े, अथवा निमित्त है इस-लिये उपादानमे कार्य होता है।

(४) प्रतिबन्धन व्यापारमें  
निमित्त भी निमित्त होता ही है ।

(५) अत्यन्त व्यापार  
ही है यह परिणाम स्वयं कार्य है,  
के बिना व्यापार और निमित्त व्यापार  
व्यापक सामग्री और निमित्तक सामग्री  
है । किसी समय यह न हो देता होता ही नहीं है ।

[ देखो, अत्यन्त व्यापार-व्यापक सामग्री ]

प्रश्न (४०६)—पुष्पक कर्मको बलवतीसे बोलते हैं—कर्म-हीनते की-  
नाम होते हैं—कर्म हीन है ?

उत्तर—(१) नहीं जी “अनन्तार कर्म” में ऐसा प्रश्न करने  
कहा निम्नानुसार व्यापार किया है—

‘कोई मूर्ख भी नहीं, एक दोष परिणामक,  
पुष्पककी बोलवती बड़ी बलवती है ।  
ज्यों ज्यों पुष्पक बल करे, वरि वरि कर्मक बल,  
रामदोषकी परिणाम त्यों त्यों होय निमित्त ।’

धर्मा—कोई—कोई मूर्ख देता कहते हैं कि व्यापारों में राम-हीन  
के भाव पुष्पककी बलवतीसे होते हैं । वे कहते हैं कि—पुष्पक;  
कर्मक परिणामके अन्तमें जाता—जाता बल करता है ।  
बाहुस्वभाव रामक एक परिणाम होते हैं ।

‘इहि विधि जो विवरीत कहा, कही कही कोई  
नो जर राम विरोध की कही किन न होय ।  
मुमुक्षु कही जन्ममें रही, पुष्पक उभर करीव  
मदम मुह परिणामिकी, कर्मकार कही न होय ।’

ताते चिद्भावनि विषै, समर्थ चेतन राउ, ३  
राग-विरोध मिथ्यातमे समकितमे सिव भाउ ।”-

( समयसार नाटक पृ० ३३३ )

अर्थ—इसप्रकार कोई मनुष्य विपरीत पक्ष ग्रहण करके श्रद्धान करता है कि वह राग विरोधरूप भावसे कभी भिन्न हो ही नहीं सकता । सद्गुरु कहते हैं कि—पुद्गलके सयोगसे रागादि नहीं है यदि हो तो जगतमे पुद्गलका सग सदैव है तो जीवको सहज शुद्ध परिणाम करनेका अवसर ही नहीं मिलेगा, इसलिये अपने ( शुद्ध या अशुद्ध ) चैतन्य परिणाममे चेतनराजा ही समर्थ है । राग-विरोधरूप परिणाम अपने मिथ्यात्व भावमे हैं, और अपने सम्यक्त्व परिणाममे शिव-भाव अर्थात् ज्ञान-दर्शन-सुख आदि उत्पन्न होते हैं ।

(२) “अविद्या जड़ लघुशक्तिसे तेरी महान् शक्तिका घात नहीं हो सकता, परन्तु तेरी शुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरा (विपरीत) चितवृत्त तेरे गले पड़ा और उससे परको देखकर आत्मा भूला, यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्यारूप कर्ममें न पड़कर स्व को न जोड़े तो जड़ का कुछ जोर नहीं है; इसलिये अपरस्पर शक्ति तेरी है...’

—( श्री दीपचन्दजीकृत “अनुभव प्रकाश” )

प्रश्न (४१०)—सज्जी पचेन्द्रियपत्ता, मनुष्यपत्ता, कर्मका मन्द उदय, सम्यग्ज्ञानीका उपदेश-आदि निमित्तोके बिम्ब-धास्तवमे मोक्ष-मार्ग प्रगट होता है ?

उत्तर—१-हाँ, क्योंकि प्रत्येक द्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अपने रूपसे हैं और पररूपसे नहीं हैं इसलिये एक द्रव्यके दूसरे



अपनी आपस-आपसी होती है  
उपादानकारण-हीना है नहीं  
होता ही है ।

२-बीज निज कुछ  
बीजवाक्य दुस्वार्थ न करे  
का आरोप नहीं जाता ।

करे तब उसके निज उचित (अनुचित)  
निमित्तत्वके का आरोप जाता है ।

३-निमित्तत्वकी तो निमित्तके बिना उपादानकारण  
कर्म होता है । किन्तु उपादानकारण के निमित्त होने से उपादानकारण  
करनेके निमित्त निमित्तके बिना कर्म नहीं होता—ऐसा निमित्तत्व  
नकारा कर्म होता है ।

४- 'विमर्शार्थमें कहीं तो निमित्तत्वकी दुस्वार्थ कर्म  
क्या है उसे तो "कर्मार्थ देवा ही है"—ऐसा कर्मार्थ कर्म  
तथा कहीं उपादानकारणकी दुस्वार्थ कर्म नकारा है जो  
"देवा नहीं है किन्तु निमित्तत्वकी ओरसे का दुस्वार्थ  
किया है"—ऐसा कर्मार्थ बाहिर—"

( देखीये प्रकाशित बीजवाक्य उपादानकारण दुस्वार्थ )

५-इत सम्बन्धमें बीजवाक्यवाक्यी "बीजवाक्य" दुस्वार्थ  
२३३ पर निमित्त-उपादानकारण के उपादान कर्मों का है कि—  
निमित्त—“देव विनेश्वर दुव बलि, कर्म निज आपस-आपसी,  
इह निमित्तके बीज कर्म, कर्मार्थ देवा ही कर्मार्थ है”  
उपादान—यह निमित्त इह बीजकी, निमित्त कर्मकी कर्म,

उपादान पलटचो नही, तौ भटक्यो ससार ।”

निमित्त—“कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय,  
सो क्षायिक सम्यक् लहै, यह निमित्त बल जोय ।”

उपादान—“केवली अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय;  
पै जाको सुलटचो धनी, क्षायिक ताको होय ।”

—इससे समझमे आता है कि निमित्त तो जीवको पूर्व अनतवार मिले हैं, किन्तु अपने क्षणिक उपादान कारण बिना वह मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं कर सका और इसलिये ससार-वनमे भटक रहा है ।

प्रश्न (४११)—निमित्त भले ही कुछ न करे, किन्तु निमित्तके बिना तो उपादानमे कार्य नहीं होता ?

उत्तर—१—“निमित्त बिना कार्य नहीं होता”—यह व्यवहार नयका कथन है । उसका अर्थ यह है कि—“ऐसा नहीं है ।” किन्तु निमित्तका ज्ञान करानेके लिए वैसा कहा जाता है, क्योंकि प्रतिसमयके उत्पाद ( कार्य ) के समय उचित बहिरग साधनोकी ( निमित्तोकी ) सनिधि ( उपस्थिति—निकटता ) होती ही है । उसका आधार यह है कि—

“ जो उचित बहिरग साधनोकी सनिधिके सद्भावमे अनेक प्रकारकी अनेक अवस्थाएँ करता है ”

— ( श्री प्रवचनसार गाथा ६५ की टीका )

२—यहाँ आशय इतना ही है कि जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है, न हो ऐसा नहीं होता ।

३—जगतमे प्रत्येक द्रव्यमे प्रतिसमय परिणमन हो ही रहा है और कार्यको अनुकूल निमित्त भी सदैव प्रतिसमय होता है; तो फिर

“निमित्तके कारण कार्य होता”-इत्यादि तर्कोंका संकेत।

उत्पत्ति और उचित निमित्तमें उपस्थिति के सम्बन्ध है ही नहीं।

३-निमित्तका अस्तित्व वैयक्तिक कार्यका प्रश्न न कि उस कार्यकी पराधीनता का प्रश्न है—

१-उपादानमें कार्य हो चुका है। उचित निमित्त का कार्य ‘निमित्त’ नाम प्राप्त करता है, इसके बिना वह निमित्त नहीं कहा जाता।

२-निमित्त पर होनेसे वह उपादानमें विकसित होकर उसे सब मनुष्य, जन्तु, पक्षी, प्रेक्षक आदि द्वारा नहीं दे सकता क्योंकि उसका उपादानमें अन्तर्भाव ही है।

३-प्रतिबन्ध प्रत्येक प्रत्यक्ष निमित्तभावस्वरूपी (अर्थात् उत्पाद, व्यव धीर-प्रीत्य—इन तीन स्वभावबुद्ध) होता है और कार्य के उत्पादके समय बहिरंग साधनों ( निमित्त ) की उपस्थिति होती ही है। (देखो श्री प्रवचनसार भा. १०२ की टीका) इसके सिद्ध होता है कि उत्पाद व्यव धीर बहिरंग साधनों (निमित्त) का समय एक ही होता है। ऐसा स्वाभाविक नियम ही है इसलिये कार्यकी उत्पत्तिके समय उचित निमित्त ही होता ही है इसलिये निमित्तकी उपस्थिति अनुपस्थिति का उचित प्रतीका करनेका प्रश्न ही नहीं रहता।

४ निमित्तके बिना उपादान बसहीन है और निमित्तकी सहामताके बिना कार्य नहीं होता—ऐसे ही प्रत्यक्ष उपस्थित करके पं० बनारसीदासजीने स्व-रचित बीहों द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि वह नामकता ब्याप्य नहीं है।

(१) जहाँ उपादान निश्चय होता है वहाँ निमित्त व्यवहार होता ही है ।

(२) जहाँ उपादान निजगुण हो वहाँ निमित्त पर होता ही है ।

(३) जहाँ देखो वहाँ उपादानका ही बल है, निमित्तका दाव कभी भी नहीं है ।

(४) जहा प्रत्येक वस्तु असहाय ( स्वतंत्ररूपसे ) सघती है ( परिणमित होती है ), वहाँ निमित्त कौन हैं ?

[ यह दोहे जिज्ञासुओं को अवश्य समझने योग्य हैं । ]

प्रश्न (४१२)—निमित्त उपादानको कुछ नहीं कर सकता, तो-शरीर मे सुई चुभ जानेसे जीवको दुःख क्यों होता है ?

उत्तर—१-जीव सदैव अरूपी होनेसे उसे सुईका स्पर्श नहीं हो सकता । एक आकाश क्षेत्रमे सुईका सयोग हुआ वह दुःखका कारण नहीं है किन्तु अज्ञानी जीवको शरीरकी अवस्थाके साथ एकत्व-ममत्वबुद्धि होती है इसलिये उसे जो दुःख होता है वह शरीरमे सुई चुभनेके कारण नहीं किन्तु उस प्रसंग पर प्रतिकूलताकी मिथ्या कल्पनासे होता है ।

२-ज्ञानीको निचली दशामे जो अल्प राग है वह शरीरके साथ एकत्वबुद्धिका राग नहीं है, अपनी क्षणिक निर्वलताके कारण, उसे जितना राग है उतना दुःख होता है । सुईके कारण ज्ञानी या अज्ञानी किसीको दुःख नहीं होता । ज्ञानी दुःखरूप विकारका ज्ञाता ही है, किन्तु उसका स्वामी नहीं है । अज्ञानी परके साथ एकत्वबुद्धि करके विकारका स्वामी बनकर दुःखी होता है ।

१-“...सामग्रीके समीप

प्रवासाका उदय होने पर मोह

बुझ-बुझ मानने है।”

“...मुनिबन धार्मिक नीका होने पर

वहीं मानते, इसलिये बुझ-बुझ

मोहनीय और बेवनीयका

लिये साता-बसाताके उदयसे

होता है।”

“...केवली मनवानके साता-बसाताके उदय होने

बुझ-बुझके कारण सामग्रीका भी संयोग है (काम्य)

प्रभावसे उन्हें किंचित् मात्र भी बुझ-बुझ नहीं-होता है।

लिये बुझ-बुझको मोह बलित ही मानना । इसलिये बुझ-बुझ

को (निमित्तको) दूर करने तथा स्वाधी रक्खनेके प्रयत्न करने

बुझ मिटला और बुझी होना चाहता है, किन्तु ये कभी-कभी

भूठे हैं तो फिर सच्चा क्या है ? क्या सच्चाईके लिये

भ्रम दूर हो जाये तो सामग्रीके बुझ-बुझ बाधित न-होकर

घपने परिणामसे ही बुझ-बुझ बाधित हो...”

—( श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक कुबराजी बाबुल्लि, बुझ २०)

प्रश्न (४१३)—निमित्त प्राप्त करके ज्ञातान परिचलित होता है-

इस कथन का क्या अर्थ ?

उत्तर—१- ‘ओ बुझोंको और पर्यायोंको पाते-प्राप्त करते-महं-

चते हैं ..ऐसे “अर्थ” के अर्थ हैं ओ अर्थोंको प्राप्तकरके

पाते-प्राप्त करते-महंचते हैं ऐसे “अर्थ” के अर्थ हैं ओ अर्थों

को क्रम-परिणामसे पाते-प्राप्त करते-पहुचते हैं ऐसे “अर्थ” वे पर्यायें हैं ।” ( प्रवचनसार गाथा ८७ की टीका )

२-“उपादान निमित्तको पाकर परिणमित होता है”—यह कथन व्यवहारनयका है । यह मात्र निमित्तका ज्ञान करानेके लिये है । उपादान कभी भी वास्तवमे निमित्तको प्राप्त नहीं करता, इसलिये ‘किमी स्थानपर व्यवहारनयको मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे ‘ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादिकी अपेक्षासे यह उपचार किया है’—ऐसा जानना चाहिये ।’

—( देहलीसे प्र० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३६६ )

३-“ उसी प्रकार जिसने पूर्वं अवस्था प्राप्तकी है ऐसा द्रव्य भी—कि जो उचित बहिरग साधनोकी सनिधिके सद्भाव मे अनेक प्रकारकी अनेक अवस्थाएँ करता है वह—अतरग साधन-भूत स्वरूप कर्ताके और स्वरूप कारणके सामर्थ्यरूप स्वभाव द्वारा अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्थारूप उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद द्वारा लक्षित होता है ’

—( श्री प्रवचनसार गाथा ६५ की टीका )

इसप्रकार प्रति समयके उत्पाद ( कार्य ) के समय उचित बहिरग साधनोकी ( कर्मादि निमित्तोको ) सनिधि ( उपस्थिति-निकटता ) होती ही है—ऐसा यहाँ बतलाया है ।

४-“ ऐसा होनेसे, सर्व द्रव्योको, निमित्तभूत अन्य द्रव्य अपने ( अर्थात् सर्व द्रव्योके ) परिणामके उत्पादक है ही नहीं, सर्व द्रव्य ही निमित्तभूत अन्य द्रव्योके स्वभावका स्पर्श न करते हुए, अपने स्वभावसे अपने परिणाम भावरूप उत्पन्न होते हैं ।” ( श्री समयसार गाथा ३७२ की टीका )

३.८. लोकमें सर्वत्र जो भी

निष्कामसे ( निष्काम ) एकदम

- बुद्धरता प्राप्त करते हैं, क्योंकि कर्म, व्यक्तिपर चाहे सर्व दोष या कर्म, अपने ब्रह्ममें समस्तब्रह्म रहा हुआ कर्म, ( समूहको ) बुझते हैं—कर्म नष्ट करते हैं एक—दूसरेको स्वर्ग नहीं करते—”

( श्री रामचन्द्रार वाङ्मय, ३.१०.१० )

प्रश्न (४१४)—सम्पत्ति जीवोंका अधिकार है। यदि प्राणिक नहीं होता, तथापि कोई सम्पत्ति नहीं बनाता है तो—कहाँ कर्मका मोर है और वह कर्म जीवको नष्टों से बचाता है। इसलिये जाना पड़ता है—वह बात सचार्थ है या नहीं है—

उत्तर—१—वह बात सचार्थ नहीं है। एक प्राण बुद्धिमानक रूप नहीं कर सकता इसलिये वह कर्म जीवको बचाने से असमर्थ है—ऐसा नहीं होता।

२—सम्पत्ति या निष्पत्ति कोई जीव नरकमें नहीं जाता चाहते, तथापि जो-जो जीव नरक क्षेत्रमें जाने योग्य हैं वे-वे जीव अपनी निम्नगती अर्थात् परिणामके कारण वहाँ जाते हैं। उसतमत्र कर्मों और तैयार करीर की संख्या अपनी (पुद्गलपरमाणुओंकी) निम्नगती अर्थात् परिणामके कारण जीवके साथ उस क्षेत्रमें जाती है।

३—और धर्मप्राप्त तो ब्रह्मबुद्धी वर्णा है तथा, इसका वह धर्मबुद्धी विकारी वर्णा है। ब्रह्मका ब्रह्म बुद्ध

स्वतंत्र और अनहाय है, उनलिये जीवकी इच्छा या अभिप्राय चाहे जिसप्रकारके होने पर भी उसकी क्रियावती शक्तिका परिणामन उनमे ( अभिप्राय या इच्छासे ) स्वतंत्ररूपसे उस समय की उस पर्यायके धर्मानुसार होता है

(४) नरकगतिके भवका बन्ध अपने पुरुषार्थके दोषसे हुआ था, इसलिये योग्य समयमे उसके फलरूपसे जीवकी अपनी योग्यताके कारण नारकका क्षेत्र मयोंगरूपसे होता है, कर्म उसे नरकमे नहीं ले जाता। कर्मके कारण जीव नरकमे जाता है—ऐसा कहना तो मात्र उपचार कथन है। जीवका कर्म के साथ निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध बतलानेके लिये शास्त्रोमे वह कथन किया है, परन्तु वास्तवमे जडकर्म जीवको नरकमे ले जाता है—ऐसा बतलानेके लिये नहीं किया।

( स्वा० म० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति  
मोक्षशास्त्र अ० ३, सूत्र ६ की टीका पृ० ३०७ )

प्रश्न (४१५)—उपादान और निमित्त कारणोंको अन्य किन नामों से कहा जाता है ?

उत्तर—(१) उपादानको अंतरंग कारण और निमित्तको बहिरंगकारण कहते हैं ?

(२) उपादानको अनुपचार (निश्चय) और निमित्तको उपचार (व्यवहार) कारण कहा जाता है।

(३) निमित्त कारणको सहकारी कारण भी कहा जाता है।

प्रश्न (४१६)—निमित्तकारणोंमे कौन—कौनसे भेद पड़ते हैं ?

उत्तर—अनेक निमित्तकारणोंमे जो मुख्य निमित्त हो उसे अंतरंग (निमित्त) कारण कहा जाता है और गौण निमित्त हो उसे



बहिरंग ( निमित्त ) कारण कह्य

( १ ) कर्म बचनके द्विजे

कारण धीरे धीमे रागादिवाक्यको कहते हैं । ( देखो बचनचिन्ता )

( २ ) --- 'घोष कृत क्षणादिक'

निमित्त साधन है बीर करवाधुनीके

जबकी तब तब रागादिक दूर होते हैं ।

अन्तरंग निमित्त साधन है ”

( ई० प्र० बीजवार्त्त प्रकाशक )

( ३ ) --- इस सम्बन्ध परिणामका बाह्य कहकार

राय-सर्वज्ञके मुसकनलते निकला हुआ बन्त

पावनमें समर्थ ऐसा ब्रह्मबुद्धि तत्त्वज्ञ ही है ।

है उनको भी कबचारेसे पदार्थ निर्णयके हेतुके कारण

( सम्बन्ध परिणामका ) अन्तरंग हेतु कहा है, क्योंकि उनकी

दर्शन मोहनीय कर्मके क्षणादिक है । ”

( निबन्धकार भाषा २१ के २२ की टीका )

( ४ ) 'किसी पुरुषको बचनका अन्तरंग निमित्त कर्म है, कर्म

का बहिरंग हेतु किसीका काव व्यापार है ।

( निमित्त ) कारण कहोच है । बहिरंग कारण कर्मको

काव किया है । मरणका भी अन्तरंग ( निमित्त ) हेतु

( निमित्त ) सम्बन्धका ( प्राप्ति ) कर्म है । बहिरंग कारण

किसीकी कावविकृति है ”

( निबन्धकार भा० १५ की टीका )

प्रश्न (४१७)—उत्पादन कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—‘उत्पत्तिके कारणको उत्पादन कारण कहते हैं । द्रव्योंकी भ्रुवता तथा पूर्व पर्यायका व्यय वह उत्पादन कारण है । यदि ऐसा न माना जाये तो ...“केवल सर्ग (उत्पाद) शोधनेवाले कुम्भकी (व्यय और ध्रौव्यसे पृथक् मात्र उत्पाद करनेवाले घड़े की ) उत्पादन कारणके अभावके कारण, उत्पत्ति ही नहीं होगी, अथवा तो असत्का ही उत्पाद होगा । वहाँ, ( १ ) यदि कुम्भकी उत्पत्ति न हो, तो सभी भावोंकी उत्पत्ति ही नहीं होगी ( अर्थात् जिसप्रकार कुम्भकी उत्पत्ति नहीं होगी उसीप्रकार विश्वके किसी द्रव्यमे किसी भी भावका उत्पाद ही नहीं होगा यह दोष आयेगा ) अथवा ( २ ) यदि असत्का उत्पाद हो तो व्योम पुष्प—( आकाशके फूल ) आदिके भी उत्पाद होगा । ( अर्थात् शून्यमेसे भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे यह दोष आयेगा । )”

(श्री प्रवचनसार गाथा १०० की टीका)

प्रश्न (४१८)—संहार ( व्यय ) कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—‘संहार (—नाश, व्यय ) के कारणको संहारक कारण कहा जाता है । उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेले व्ययको मानने-वाला संहारके कारणको नहीं मानता, इसलिये व्यय (संहार) का कारण उत्पाद और ध्रौव्य है, उसे न माना जाये तो—“मात्र संहार आरम्भ करनेवाले मृत्तिका पिण्डका ( उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेला व्यय करनेवाले मृत्तिका पिण्डका ), संहार कारणके अभावके कारण संहार ही नहीं होगा, अथवा

तो सत्का ही ब्रह्मका ही  
 का संहार न हो के सत्ता ब्रह्मका  
 ( अर्थात् ब्रह्मका ही सत्ता  
 प्रकार ब्रह्मके किसी भी ब्रह्मका  
 नहीं होना—यह बोध घालना )  
 उच्छेद होना तो ब्रह्मका ही  
 सर्व ब्रह्मोंका समूल नाश हो घालना—यह

—( श्री प्रवक्तृसाह चारु )

[ उत्पादन कारण और संहार कारण के अन्तर  
 भेद है । ]

प्रश्न (४१६)—समर्पण कारण कितने कहते हैं ?

उत्तर—प्रतिबन्धका अभाव तथा सहकारी ब्रह्मत्त्व  
 भावको समर्पणकारण कहते हैं । समर्पणकारणके  
 उत्पत्ति नियमसे होती है । उसके दृष्टान्त—

१— .. अब यह आत्मा जिस कारणसे ( ज्ञानान्तर्यामी  
 से ) कार्यसिद्ध भवत्ये हो उस कारणका उदाहरण करे वह  
 अन्य कारण ( निमित्त कारण ) अथवा सिद्धि ही है  
 कार्यकी सिद्धि भी अथवा होमी ही.. इसलिये जो  
 श्री विनेश्वरके उपदेशानुसार पुनर्बन्ध पूर्वक ब्रह्मका उपाय  
 करता है उसे तो काव्यमयि और अविद्यमान ही ही है, तब  
 कर्मके उपशमार्थ हुए हैं तब तो वह ऐसा उपाय करता है  
 इसलिये जो पुनर्बन्ध पूर्वक मोक्षका उपाय करता है जो  
 सर्व कारण मिलते हैं ऐसा निश्चय करना और उसे अथवा  
 मोक्षकी प्राप्ति होती है ....”

( दे० से, प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५६ )

[ नोट—यहाँ ऐसा बतलाया है कि—जहाँ क्षणिक उपादानकी योग्यता हो वहाँ निमित्त कारण होते ही हैं, और उन दोनोंको समग्ररूपसे समर्थकारण कहते हैं । ]

२—वनारसीविलास—उपादान—निमित्त—दोहामे कहा है कि —

“उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय,  
भेदज्ञान प्रमाण विधि, विरला बूझे कोय ”

अर्थ—जहाँ, निज शक्तिरूप उपादान तैयार हो वहा परनिमित्त होता ही है,—ऐसी भेदज्ञान प्रमाणकी विधि ( व्यवस्था ) है, यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते हैं ।

[ यहाँ उपादान—निमित्त दोनोंको ही समग्ररूपसे समर्थकारण कहा है । ]

३—“ कोई कारण ऐसे है कि—जिनके होनेसे कार्य अवश्य सिद्ध होगा ही तथा जिनके न होनेसे कार्य सर्वथा सिद्ध नहीं होगा, जैसे कि—सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र्यकी एकता होनेसे तो मोक्ष होता है और वैसा हुए बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता ।”

( देहली० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६२ )

[ यहाँ क्षणिक उपादानको समर्थकारण कहा है, किन्तु वहाँ उचित कर्मका अभाव निमित्त कारण होता है—ऐसा समझना । ]

प्रश्न (४२०)—असमर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—“भिन्न—भिन्न प्रत्येक सामग्रीको असमर्थ कारण कहते हैं ।

असमर्थ कारण कार्यका नियामक नहीं है ।”

( जैन सि० प्रवेशिका )

उसके दुष्टान्तः—

५१-५३

१—“सम्बन्धन,  
भी न हो तो नहीं मोक्षमार्ग ही

(

२—“जिसे ऊपर की

( वेदविज्ञानके) सुखावधि वाली होता  
है—किस प्रकार प्रत्यक्ष कर्मों का फल नहीं  
सुखवर्तकको नहीं छोड़ता, छोटी  
किया होने पर भी ( नवीन विधि विधि)  
ज्ञान ज्ञानको नहीं छोड़ता  
होने पर भी स्वयंको छोड़ता नष्ट  
से स्वभावमान वस्तुका ही उन्मेष हो  
उन्मेष तो होता नहीं है क्योंकि उसके वास्तविक फल  
ऐसा वास्तविक हुआ ज्ञानी कर्मों के वास्तविक  
आकर्मित हुआ ) होने पर भी राखी नहीं  
होता, मोही नहीं होता, कर्मों का  
करता है ”

( भी समवसार भा० १५४-१५६

[ यही बाह्य हजार कारणोंको तथा प्रत्यक्ष  
प्रसमय कारण कहा है । ]

३— प्रत्यक्ष कारण तो प्रत्यक्ष प्रकारके होते हैं ।  
तो ऐसा होता है बिना के हुए बिना कार्य न हो।

होनेसे कार्य हो अथवा न भी हो, जैसे कि—मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता, परन्तु मुनिलिंग धारण करने से मोक्ष हो अथवा न भी हो...”

( मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ ४६२ )

[ १-भावलिंग रहित बाह्य मुनिलिंग ( अर्थात् अट्टाईस भूलगुणका पालन, नग्न दिगम्बर दशा ) को यहाँ असमर्थ कारण कहा है ।

२-जहाँ क्षणिक उपादान कारण हो वहाँ निमित्त कारण होता ही है । उन दोनोंको समग्ररूपसे समर्थ कारण कहते हैं । अकेला क्षणिक उपादान कारण कभी होता ही नहीं, इसलिये भावलिंग मुनिपना हो वहाँ बाह्य मुनिलिंग नियमसे होता है—ऐसा समझना । ]

४-क्रोधोत्पत्तो पुन वहिरग यदि भवेत् साक्षात् ।

न करोति किञ्चिदपि क्रोध तस्य क्षमा भवति धर्म इति ।

अर्थ—क्रोध उत्पन्न होनेके साक्षात् बाह्य कारण मिलने पर भी जो अल्प भी क्रोध नहीं करता उसके उत्तम क्षमाधर्म होता है ।

( श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा-७१ )

[ यहाँ बाह्य कारण अर्थात् निमित्तकारण अकेला है इसलिये उसे असमर्थ कारण समझना । ]

श्ल ( ४२१ )—साधकतम कारण किसे कहते हैं ?

तर—क्षणिक उपादानकी योग्यताको साधकतम कारण कहते हैं

—( विशेषके लिये देखिये, श्री प्रवचनसार गाथा १२६ की टीका )

जीव ससारदशामे या धर्मदशामे अकेला ही स्वय अपना कारण है, क्योंकि वह अकेला ही करण ( कारण ) था ।

वहाँ अपने करम-साधनको

प्रश्न (४२९)—बहुकारी कारणका  
समझाइये ।

उत्तर—स्वयमेव ही कमानादि क्रियाक्रम  
उन्हें बनास्तिक्रम सहकारी करवा है ।

कना इत्यादि ही है कि वहाँ कर्मादि  
पुण्यस गमनादि क्रियाक्रम करते हैं ।

( देखिये बोम्बटार बीचकाठ नाचा' इत्यादि वही ही )

प्रश्न (४२९)—अन्वयकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्बन्धितको साधकवशात् चारित्र्य पुण्य  
मिलवशा होती है उसमें कुछवशा यह उपाय, व्यव  
हारे साथ अभिमानात्मकसे रहनेवाले पुण्यवश विविध  
से उसे अन्वयकारण कहा जाता है ।

दृष्टान्त — '....बहुमत चारण भिन्ने विना एकत्र चारित्र्य  
होता इसलिये कि वेतोंको (महावर्तोंको) एकत्र  
जानकर कारणमें कार्यका व्यवहार करके ही चारित्र्य  
जैसे परिहृतदेवाधिकका अज्ञान होनेसे तो सम्भव ही  
न भी हो परन्तु परिहृत देवाधिकका अज्ञान हुए  
अज्ञानका सम्भव कभी भी नहीं होता इसलिये  
विकले अज्ञानको अन्वयकारण कहकर साधक कारणों  
का व्यवहार करके उस अज्ञानको सम्भव कहा है—'

( देखिये बोम्बटार प्रकाशक पुस्तक ४२९ )

प्रश्न (४२९)—बहुकारी कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—निमित्त कारणको सहकारी कारण भी कहते हैं ।

दृष्टान्त —“अघातिकर्मोंके उदयके निमित्तसे शरीरादिकका संयोग होता है, मोहकर्मका उदय होने पर शरीरादिकका संयोग आकुलताका बाह्य सहकारी कारण है । अतएव मोहके उदय-से रागादिक हो और बाह्य अघाति कर्मोंके उदयसे रागादिक के कारणरूप शरीरादिकका संयोग हो तब आकुलता उत्पन्न होती है । मोहके उदयका नाश होनेपर भी अघाति कर्मोंका उदय रहता है, किन्तु वह कुछ भी आकुलता उत्पन्न नहीं कर सकता, परन्तु पूर्वकालमें आकुलताको सहकारी कारण था, इसलिये अघातिकर्मोंका नाश भी आत्माको इष्ट ही है ”  
( मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५२ )

[ यहाँ द्रव्य मोहकर्मके उदयको अतएव और शरीरादि-को बाह्य सहकारी कारण कहा है । आकुलतामें वे दोनों-निमित्त कारण हैं । ]

प्रश्न (४२५)—जीवका दूसरे द्रव्य उपकार करते हैं—ऐसा कथन तत्त्वार्थसूत्रमें आता है उसका क्या अर्थ ?

उत्तर—श्री परमात्मप्रकाश अ० २, गाथा २६-२७ में इस अर्थसे कहा है कि—परद्रव्य जीवका उपकार करते हैं वह व्यवहार-कथन है, अर्थात् वास्तवमें उपकार नहीं करते किन्तु स्व-सवे-दन लक्षणसे विरुद्ध विभाव परिणतिमें रत हुए जीवको वे ही निश्चयसे दुःखके कारण ( निमित्त कारण ) हैं ।

उस गाथाके शीर्षक निम्नानुसार हैं—

१—“अब, जीवका व्यवहारनय द्वारा अन्य पाँचों द्रव्य



उपकार करते हैं—वेला करते  
हुए लगे कारण है वेला करते हैं १२

२—अब, कर्तुण्यार्थ लक्षण  
कारण है—वेला बनकर है ~~अधिक~~  
मोक्षमार्गमें स्थित हो ।—ऐसा  
[ यह भाषाएँ और उनकी सीमा ] -  
बोध्य है । ]

प्रश्न (४२६) कार्य उपादान कारण के लिये  
निमित्त कारण सङ्ग होता है अथवा दोनों  
उत्तर—(१) उपादानकारणसङ्ग कार्य  
कारण वेला कार्य होता है ।

भाषाटः—हिन्दी समवहार की समझना  
पृष्ठ १११ ११३-११४-१०४-४७६  
प्रकाश पृ० २, भाषा २१ दोनों

२—उपादान कारण वेला कार्य होता है इसलिये  
कारण वेला अथवा दोनों वेला कोई कार्य नहीं होता ।  
सङ्ग = समान वेला समान एक-सा ।

[ अथवा गोमन्त्र कोष ( पुनरावृत्ति ) पृष्ठ

प्रश्न (४२७)—निमित्त—निमित्तिक सम्बन्ध बीच  
बीच ही होता है वा उपादान कारण और निमित्तिक  
सम्बन्ध भी उनमें होता है ?

उत्तर—(१) दोनों प्रकारका सम्बन्ध होता है । वाच  
निमित्तिक सम्बन्ध ही होता है ऐसा नहीं है ।

२-रागादि विकाररूप परिणमन वह जीवका स्वतंत्र नैमित्तिक कार्य है और द्रव्यकर्मका उदय वह पुद्गलका स्वतंत्र कार्य है तथा जीवके विकारका वह निमित्तमात्र है ।

३-जीवके रागादि अज्ञानभाव वह अशुद्ध उपादानकारण है-निश्चयकारण है और द्रव्यकर्मका उदय वह निमित्त कारण है-व्यवहार कारण है ।

श्री समयसार (हिन्दी) गाथा १६४-६५ पृष्ठ २३८ जयसेनाचार्य टीका में कहा है किः—  
निर्विकल्पसमाधिअष्टाना मोहसहित कर्मोदयो व्यवहारेण निमित्त भवति । निश्चयेन पुन अशुद्धोपादान कारण स्वकीय रागादि अज्ञानभाव एव । १६४-१६५ ।

४-जीवका रागादि विकाररूप परिणमन निश्चयसे ( वास्तवमें ) निरपेक्ष है ।

—(पचास्तिकाय गाथा ६२ की टीकाके आधार पर )

५-तत्त्व दृष्टिसे आत्मा ज्ञाता है और कर्म ज्ञेय है, इसलिये उनके बीच ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध है, परन्तु जो ऐसे ज्ञाता-ज्ञेयके सम्बन्धको चूकते हैं वे ही जीव रागादि विकार-रूप परिणमन करते हैं और उन्हें द्रव्यकर्मका उदय निमित्तमात्र कारण अर्थात् व्यवहारकारण कहा जाता है ।

—इससे ऐसा समझना कि —निमित्त ( परवस्तु ) जीवको पराधीन करता है, बिगाड़ता है अथवा सुधारता है—ऐसी परतन्त्रता माननेरूप मिथ्यादृष्टिपना छोड़कर स्वाश्रयी सच्ची दृष्टि करना योग्य है ।

( स्वा० मं० टस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी भाषा में  
मोक्षशास्त्र, अ० ७ की सूचिका पृ० ४६४-६५ )

अपनी प्रज्ञाके अपराधसे शास्त्रके अर्थको तथा  
आगे-पीछेकी गाथाओंकी सचिको न समझनेवाले,  
जीवकी अवस्थामें रागादि होनेके सम्बन्धमें स्फटिक-  
के छटान्त द्वारा प्ररूपणा करते हैं, तत्सम्बन्धी स्पष्टी-  
करणः—

प्रश्न (४३०)—श्री समयसार बन्ध अधिकार गाथा २७८-७९ में—  
स्फटिक स्वभावसे शुद्ध होने पर भी सास आदि रंगोंके संयोग  
से सासादिरूप किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वभावसे  
शुद्ध होने पर भी अन्य द्रव्यों द्वारा रागी आदि किया जाता है।  
—ऐसा कहा है, उस पर से ऐसा माना जाये कि—“जैसा  
कर्मका सबय हो तबनुसार ही—तद्रूप ही—जीवको विकार  
करना पड़ता है—ऐसा वस्तुका स्वभाव है तो ‘बहु मान्यता’  
ठीक है ?

उत्तर—१—नहीं ( बहु मान्यता भूठी है ) इस विषयका स्पष्टीकरण  
श्री समयसार भाटक बंधद्वारमें मिम्नानुसार किया है कि—  
जैसे नामा बरम पुरी बनाई बीजे हेठ  
उज्जबल बिमल मणि सूरज—कराति है  
उज्जसता भ से जब वस्तुको बिचार कीजे  
पुरी की मलक सो वरन जाति—भाति है।  
तसे जोब दरब की पुगल निमित्तक  
ताकी ममता सो मोह मदिरा की भाति है

भेदग्यान दृष्टिमी मुभाव साधि लीजै तहाँ

साँचो सुद्ध चेतना अवाची सुख साति है ॥” ३४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार स्वच्छ और श्वेत सूर्यकान्त अथवा स्फटिक मणिके नीचे अनेक प्रकारके रंगीन डाक रखे जायें तो वे अनेक प्रकारके रंग विरगे दिखने लगते हैं, और यदि वस्तुके मूल स्वरूप का विचार किया जाये तो उज्ज्वलता ही दिखाई देती है। उसी प्रकार जीव द्रव्यको पुद्गल तो मात्र निमित्तरूप है (किन्तु) उसकी ममताके कारणसे मोह—मदिराकी उन्मत्तता होती है। तथापि भेद विज्ञान द्वारा स्वभावका विचार किया जाये तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शांति प्रतीत होती है ॥ ३४ ॥

२—ऊपरकी गाथा, टीका और उसके कलशके अनुसंधानमें समयसार गा० २८० में इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। वहाँ बतलाया है कि—वस्तु स्वभावको जाननेवाले ज्ञानी (आत्मा) अपने शुद्ध स्वभावसे ही च्युत नहीं होते, वे कर्मका उदय होने पर भी राग—द्वेष—मोह भावके कर्ता नहीं होते। और गाथा २८१ में कहा है कि वस्तु स्वभावको न जाननेवाले ऐसे अज्ञानी जीव कर्मके साथ एकत्वबुद्धि करते हैं, और भेदज्ञान नहीं करते इसलिये वे कर्मके उदयमें युक्त होकर राग—द्वेष—मोहादि भावके कर्ता होते हैं।

३—समयसार—बध अधिकारकी गाथाओंमें ऐसा समझाया है कि—आत्माका ध्रुवस्वभाव अबध है, उसका जो आश्रय नहीं करते उन्हींको भाव तथा द्रव्यबध होता है, और जो ध्रुवस्वभावका आश्रय करते हैं उन्हें भाव तथा द्रव्यबध नहीं होता। [ सम्यग्दृष्टिको अपनी निर्बलताके कारण अल्पबध होता है उसे गौण माना है। ]

४—समयसार गाथा ३१२ से ३१५ में भी तदनुसार बतलाया

प्रश्न (४२५)—साक्षात् कीर

उत्तर—उपादानकारणही साक्षात्

कारण कहल जाता है ।

१—यह प्रश्नों का उत्तर है।

वृत्तान्त २—उत्पत्तिज्ञान ३—सर्व-कारण

वृत्तान्त ) मिथ्याबुद्धिको साक्षात्कार

को लप्ते होते हैं । यहाँ

सम्बन्धके परम्परा कारण ही लप्ते लप्ते

( सम्बन्धके ) साक्षात् कारण हैं ।

( मोक्षकारण )

२—मिथ्याबुद्धिके लप्ते के प्रकट

होती है । मिथ्याबुद्धिका सुखरूप सर्व लप्ते के

कारण है ।

( पञ्चास्तिकाय वाचा १९६ की

टीकाके ४

३—पारम्पर्येण तु साक्षात्कारिणा कथितं निमित्तम् ।

ससारवमनकारणमिति निम्न साक्षात् कारणीति ॥ ३९ ॥

अर्थ—कर्मका साक्षात् करनेवाली किन्ना द्वारा परम्पराओं की

निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये साक्षात्कारों का साक्षात्कार

कारणरूप साक्षात्कारों निम्न जानो ॥ ३९ ॥

( देखो श्री कुम्भकुम्भाचार्यकृत इत्युक्तानुमेक वाचा ३९ )

४—मति-मृत-अवधि-नव-वर्ष-केवलज्ञान को

साक्षात् मोक्ष कारण है ।

( देखो, समयसार (हिन्दी) गा० २१५, पृष्ठ ३०४,  
श्री जयसेनाचार्यकृत टीका)

तीर्थ कर प्रकृति आदि परम्परा निर्वाणका कारण हैं ।

( देखो, समयसार ( हिन्दी ) गाथा १२१-१२५ की  
श्री जयसेनाचार्यकृत टीका पृष्ठ १८६ )

५-“ विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप ऐसा जो  
सिद्धिके परम्परा हेतुभूत भगवत् पंचपरमेष्ठीके प्रति चलता-  
मलिनता-अगाढता रहित उत्पन्न हुआ निश्चल भक्तियुक्तपना  
वही सम्यक्त्व है . ”

—(गुज० आवृत्ति नियमसार गा० ५१-५५ की टीका )

प्रश्न (४२६)—सम्यग्दृष्टिका शुभभाव वह परम्परासे धर्मका कारण  
है—ऐसा शास्त्रमे कुछ स्थानो पर कहा जाता है उसका  
क्या अर्थ ?

उत्तर—“सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूपमे जब स्थिर नहीं रह सकते  
तब राग-द्वेष तोड़नेका पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु पुरुषार्थ निर्बल  
होनेसे अशुभभाव दूर होता है और शुभ रह जाता है । उस  
शुभभावको वे धर्म या धर्मका कारण नहीं मानते, परन्तु उसे  
आस्रव जानकर दूर करना चाहते हैं, इसलिये जब वह शुभ-  
भाव दूर हो जाता है उस समय जो शुभभाव टला उसे शुद्ध-  
भाव (धर्म)का परम्परा कारण कहा जाता है, साक्षात् रूपसे  
वह भाव शुभास्रव होनेसे बन्धका कारण है, और जो बन्धका  
कारण हो वह सवरका कारण नहीं हो सकता ।”



भेदग्यान दृष्टिमें मुभाव नाधि लोजे तहाँ

साँचो सुद्ध चेतना अवांनी मुन्व साति है ॥” ३४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार स्वच्छ और श्वेन सूर्यकान्त अथवा स्फटिक मणिके नीचे अनेक प्रकारके रंगीन डाक रखे जायें तो वे अनेक प्रकारके रंग विरंगे दिखने लगते हैं, और यदि वस्तुके मूल स्वरूप का विचार किया जाये तो उज्ज्वलता ही दिखाई देती है। उसी प्रकार जीव द्रव्यको पुद्गल तो मात्र निमित्तरूप है (किन्तु) उसकी ममताके कारणसे मोह-मदिराकी उन्मत्तता होती है। तथापि भेद विज्ञान द्वारा स्वभावका विचार किया जाये तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शांति प्रतीत होती है ॥ ३४ ॥

२—ऊपरकी गाथा, टीका और उसके कलशके अनुसंधानमे समयसार गा० २८० मे इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। वहाँ बतलाया है कि—वस्तु स्वभावको जाननेवाले ज्ञानी (आत्मा) अपने शुद्ध स्वभावसे ही च्युत नहीं होते, वे कर्मका उदय होने पर भी राग-द्वेष-मोह भावके कर्ता नहीं होते। और गाथा २८१ मे कहा है कि वस्तु स्वभावको न जाननेवाले ऐसे अज्ञानी जीव कर्मके साथ एकत्वबुद्धि करते हैं, और भेदज्ञान नहीं करते इसलिये वे कर्मके उदयमे युक्त होकर राग-द्वेष-मोहादि भावके कर्ता होते हैं।

३—समयसार-बध अधिकारकी गाथाओमे ऐसा समझाया है कि—आत्माका ध्रुवस्वभाव अबध है, उसका जो आश्रय नहीं करते उन्हीको भाव तथा द्रव्यबध होता है, और जो ध्रुवस्वभावका आश्रय करते हैं उन्हे भाव तथा द्रव्यबध नहीं होता। [ सम्यग्दृष्टिको अपनी निर्वलताके कारण अल्पबध होता है उसे गौण माना है। ]

४—समयसार गाथा ३१२ से ३१५ मे भी तदनुसार बतलाया



है। वाचा ११४ में तो कहा  
 है उत्पन्न होना-मर होना नहीं छोड़ता  
 मिथ्यासृष्टि है, अर्थात् है।

२-प्रवचनसार शीघ्र अधिकार वाचा ११५  
 आत्मब्रह्मसे ( ब्रह्मवादात् ) स्व-ब्रह्म  
 है। अर्थात् आपादि विकारों के अपने  
 होते हैं। ब्रह्मकर्म तो निमित्त मात्र है।  
 को विकार कराने के लिये निमित्त होकर  
 किन्तु 'संसारवृत्ता' में आत्मा पर ब्रह्म  
 नामको ) निमित्तमात्र करता है ( निमित्तवत्ता )—ऐसे केवल  
 स्वपरिणाम मात्रके (—वे स्वपरिणाम स्वब्रह्मपरोक्ष ) का  
 त्वका अनुभव करता है।

वाचार्थ—'अभी संसारवृत्ता में भी ब्रह्मविकारों के परिणाम-  
 को निमित्तमात्र करके अपने बहुत परिणामका ही होता  
 है। ( प्रवचनसार वाचा ११५-मुक्त ११५ )

प्रश्न (४३१)—वत्तावानका क्या अर्थ है ? १-वत्तावान कारण निमित्त  
 कहते हैं ?

उत्तर—१-वत्तावानका अर्थ अर्थात् अर्थ वत्तावानों के वत्तावानका  
 कारण—ऐसा होता है।

२-वत्तावान कारण अपना कार्य करनेका वत्तावान स्वयं कहे  
 से कारण करे उस समय को निमित्त हो उसे वत्तावान कारण  
 कहा जाता है। निमित्त वत्तावानों वत्तावानको किन्तु वत्तावान

नहीं दे सकता—ऐसा बतलानेके लिये बलाधान मात्र निमित्त—  
को कहा जाता है । जिसके दृष्टान्त.—

(१) “ वह इन्द्रिय ज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होनेपर भी मूर्त ऐसे पचेन्द्रियात्मक शरीरको प्राप्त होता हुआ, ज्ञप्ति उत्पन्न होनेमें बलधारणका निमित्त होता है इसलिये जो उपलभक ( बतलानेवाला, जाननेमे निमित्तभूत ) है ऐसे उस मूर्त (शरीर) द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तुको—कि जो योग्य हो उसका अवग्रहण करके, कदाचित् उसके ऊपर—ऊपर की ( अवग्रहसे आगे—आगे की ) शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है ” ( प्रवचनसार गाथा ५५ की टीका )

(२) तत्त्वार्थसार अध्याय २, सूत्र ३६ मे कहा है कि—  
क्रियाहेतुत्व मेतेषा निष्क्रियाणा न हीयते ।

यतः खलु बलाधानमात्रमत्र विविक्षितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—धर्मास्तिकाय निष्क्रिय होने पर भी उसका क्रियाहेतु-  
पना नाशको प्राप्त नहीं होता जिससे उसे वास्तवमे बलाधान मात्र  
कहा जाता है ।

(३) जिसप्रकार उपकार और आलम्बन—इन शब्दोका अर्थ  
निमित्त होता है उसी प्रकार बलाधानका भी वैसा ही अर्थ होता  
है । राजवार्तिक अध्याय ५, सूत्र १६-१७ के नीचे कारिका १६ मे  
कहा है कि —

तयो कर्तृत्वप्रसंग इति चेन्नोपकारवचनाद् यष्ट्योदिवत् ॥ १६ ॥

है। भाषा ३१४ में तो

से उत्पन्न होता—बह होता नहीं छोड़ता

मिथ्यातुष्टि है, प्रसक्त है।

२—प्रत्यक्षसार वेद अधिकार, यथा

प्राप्त्यवस्थे ( इत्यवस्थे )

है। प्रत्यक्ष सारिकार कीकडे करने

होते हैं। इत्यवस्थे तो निमित्त भाव है।

को विकार करानेके किन्ने निमित्त होकर

किन्तु "संसारवशात् ज्ञाना पर इत्य

भावको ) निमित्तभाव करता है (—निमित्तभावार्थ )—

स्वपरिणाम भावके (—स्वपरिणाम स्वभावार्थ )

त्वका अनुभव करता है।

भावार्थ—"अभी संसारवशात् हीन कीकडे करने

को निमित्तभाव करके करने अनुभव कीकडे करने

है। ( प्रत्यक्षसार भाषा ३१४—पृष्ठ ३१३ )

प्रश्न (४३१)—बलाभावका क्या कार्य है ? २—बलाभाव का कार्य किन्ने

करते हैं ?

उत्तर—१—बलाभावका अनुपपत्ति कार्य

धारण—ऐसा होता है।

२—आवाग कारण करना कार्य करके वल स्वयं करने

से धारण करे वह अवयव को निमित्त हो कर बलाभाव धारण

कहा जाता है। निमित्त वाक्यार्थ आवागको निमित्त वल

नही दे सकता—ऐसा बतलानेके लिये बलाधान मात्र निमित्त—  
को कहा जाता है । जिसके दृष्टान्त —

(१)“ वह इन्द्रिय ज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होनेपर भी मूर्त ऐसे पचेन्द्रियात्मक शरीरको प्राप्त होता हुआ, ज्ञप्ति उत्पन्न होनेमें बलधारणका निमित्त होता है इसलिये जो उपलभक ( बतलानेवाला, जाननेमे निमित्तभूत ) है ऐसे उस मूर्त (शरीर) द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तुको—कि जो योग्य हो उसका अवग्रहण करके, कदाचित् उसके ऊपर—ऊपर की ( अवग्रहसे आगे—आगे की ) शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है ” ( प्रवचनसार गाथा ५५ की टीका )

(२) तत्त्वार्थसार अध्याय २, सूत्र ३६ मे कहा है कि—  
क्रियाहेतुत्व मेतेषा निष्क्रियाणा न हीयते ।

यत्. खलु बलाधानमात्रमत्र विविक्षितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—धर्मास्तिकाय निष्क्रिय होने पर भी उसका क्रियाहेतु-  
पना नाशको प्राप्त नहीं होता जिससे उसे वास्तवमे बलाधान मात्र  
कहा जाता है ।

(३) जिसप्रकार उपकार और आलम्बन—इन शब्दोका अर्थ  
निमित्त होता है उसी प्रकार बलाधानका भी वैसा ही अर्थ होता  
है । राजवार्तिक अध्याय ५, सूत्र १६—१७ के नीचे कारिका १६ मे  
कहा है कि —

तयो कर्तृत्वप्रसङ्ग इति चेन्नोपकारवचनाद् यष्ट्योदिवत् ॥ १६ ॥  
उपरोक्त कारिका की संस्कृत टीका का अर्थ —

“गति—स्थिति का धर्म और अधर्म कर्ता है—ऐसा धर्म का प्रसंग आता है तो ऐसा नहीं है। क्या कारण ? उपकार—वचन के कारण। उपकार, बलाघान, अवसम्बन्धादि पर्यायवाची शब्द हैं। जिससे धर्म अधर्म के गति—स्थिति होने में प्रधान कर्तृत्व देने का अस्वीकार हुआ है। जैसे—अपनी जाँघ के बल से जाते हुए धन्ध ( मनुष्य ) को अपवा अध्व किसीको सकड़ी आदि उपकारक होते हैं—न कि प्रेरक ( होते हैं ) उसी प्रकार अपनी शक्ति से स्वयमेव बसने—स्थिर रहने वाले जीव—पुद्गलों को धर्म—अधर्म उपकारक हैं—न कि प्रेरक हैं।”

प्रश्न (४३२)—मुख्य तथा उपकार कारणों का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उपादान वह मुख्य कारण है और निमित्त वह उपकार कारण है।

मुख्य का अर्थ निश्चय और उपकार का अर्थ व्यवहार होता है। (देखो पुरुषार्थसिद्धयुपाय (कसकता से प्रकाशित) गाथा २२२ की हिन्दी टीका पृष्ठ १२२ और छहडाला—डाम ६ का १४ वाँ छन्द।)

प्रश्न (४३३)—निमित्त—उपादान के प्रदनों में क्या सिद्धान्त निहित है ?

उत्तर—१—(१) कोई अकेले ध्रुव उपादान कारणको माने किन्तु दार्शनिक उपादान तथा निमित्त कारणोंको न माने (२) कोई ध्रुव उपादान कारणको तथा निमित्त कारणको माने किन्तु दार्शनिक उपादान कारणको न माने (३) कोई दार्शनिक उपादान कारणको माने किन्तु ध्रुव उपादान तथा निमित्त कारणोंको न माने (४) कोई निमित्त कारणको ही माने किन्तु ध्रुव और दार्शनिक उपादान कारणोंको न माने उसकी यह चारों

प्रकारकी मान्यताएँ मिथ्या हैं ।

२-उपादानका कार्य उपादानसे ही होता है । निमित्त कारण कार्य कालमे होता है, किन्तु उस निमित्तकारणकी प्रतीक्षा करनी पडती है या उसे मिलाना पडता है-ऐसा कोई माने तो वह मान्यता मिथ्या है ।

३-निमित्त पर है, इसलिये उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, तथापि कोई बाह्य सामग्री रूप निमित्तकारण ढूँढनेके निरर्थक कार्यमे रुके उसे आकुलता हुए विना नहीं रहेगी ।

४-निमित्तके साथका सम्बन्ध एक समय पर्यन्त होता है-ऐसा सूक्ष्मदृष्टिवान जानता है । छद्मस्थका ज्ञानोपयोग असंख्यात समयका है, इसलिये निमित्त मिलानेकी शोध व्यर्थ है ।

५-निमित्त अपना उपादान है और स्व उपादानरूपसे अपना कार्य अपनेमे करता है । यदि वह पर उपादानका कार्य अशक्त भी करे अर्थात् पर उपादानको वास्तवमे असर करे, उसको आधार दे, उस पर प्रभाव डाले, उसे लाभ-हानि करे, मदद करे, शक्ति दे-आदि, तो निमित्तने दो कार्य किये- एक अपना और दूसरा पर उपादानका ऐसा सिद्ध होगा, और ऐसा माननेवाला द्विक्रियावादी होनेसे वह अरिहतके मतका नहीं है ।

६-गतिमानादि निमित्तोको (असद्भूत व्यवहारनयसे) निमित्तकर्ता-हेतुकर्ता-कहा जाता है । अन्य निमित्तोसे उनका प्रकार भिन्न बतलानेके लिये ऐसा कहा जाता है, किन्तु ऐसा ज्ञान करानेके लिये, नहीं कि वे निमित्त उपादानका कुछ भी कार्य करते हैं । सर्व प्रकारके निमित्त उपादानके प्रति घर्मा-

स्तिकायवत् सदासीन कारण है ।

( देखो “इष्टोपदेश” गाथा-३१ )

७-बीब पुद्गल गति करें सब धर्मास्तिकायकी उपस्थिति न हो ऐसा नहीं हो सकता उसी प्रकार जब क्षणिक उपादान कार्यके लिये तैयार हो सब अनुकूल निमित्त उपस्थित न हो ऐसा नहीं होता ।

८-निमित्तकारण उपादान कारणके प्रति निश्चयसे (वास्तवमें) अकिंचित्कर (कुछ न करने वाला) है इसीलिये उसे निमित्तमात्र, बलाधानमात्र, सहायमात्र, अहेतुष्व-मेसे शक्तों द्वारा सम्बोधित किया जाता है ।

९-निमित्त ऐसा धोपित करता है कि उपादानका कोई कार्य मैंने नहीं किया मुझमें उसका कार्य करनेकी शक्ति नहीं है किन्तु वह कार्य उपादान धर्मेसे मे किया है ।

१०-निमित्त व्यवहार घोर परद्रव्य है अथवा किन्तु वे आशय करने योग्य नहीं है इसलिये हेय है ।

[ देखो भी समयसार गाथा ११६ से १२० की टीका-श्री जयसेनाचार्यवृत्त पृष्ठ १८२ द्रव्य संग्रह गा० २३ की टीका तथा सिद्धपत्र विधान पूजा छठवींकी जयमाता । (कबीरपर संतसाम वृत्त ) 'जय परनिमित्त व्यवहार त्याग..... ]

११-जितने कार्य हैं उतने निमित्तोंके स्वभाव भेद है किन्तु एक भी स्वभाव भेद ऐसा नहीं है कि जो परका उपादान का कोई कार्य वास्तवमें करे ।

१२-किसी समय उपादान कारण निमित्तमें प्रतिपद्य

रख देता है और कभी निमित्त कारण उपादानमे बलात्कारसे नाना चमत्कार घुसा देता है—ऐसी मान्यता भूठी है। वह दो द्रव्यो की एकत्व वृद्धि बतलाती है। निमित्त कारणके लिये पाँचवी विभक्तिका उपयोग किया जाता है, इसलिये वह आरोपित कारण मिटकर निश्चय कारण नहीं हो जाता। निमित्त कारण होनेके लिये परिश्रम, तीव्र यातना या घोर तपस्या करनी पड़ती है—यह मान्यता भूठी है।

१३—कार्यकी उत्पत्तिके समय उपादान और निमित्त—दोनों अविकल कारण होते हैं,—ऐसी वस्तु स्वभावकी स्थिति है।

१४—पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन निमित्तोसे चैतन्य उत्पन्न होता है—ऐसा माननेवालेको श्री आचार्य कहते हैं कि—उपादानके बिना कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता।

१५—छहो द्रव्योमे अनादि—अनन्त प्रत्येक समय कार्य होता ही रहता है, कोई भी समय किसी भी द्रव्य कार्य रहित नहीं होता और उस प्रत्येक कार्यके समय उपादानकारण और निमित्त कारण—दोनों सुनिश्चित रूपसे होते ही हैं—न हो ऐसा कभी नहीं होता।

१६—उपादानकारण हो और चाहे जैसा निमित्तकारण हो—ऐसा माने वह भी मिथ्यामति है क्योंकि उपादानके अनुकूल ही उचित निमित्त कारण होता है।

निमित्त कारण आये तभी उपादानमे कार्य होता है—ऐसी मान्यता भी भूठी है, क्योंकि प्रत्येक क्षणिक उपादानकारण के समय निमित्तकारण होता ही है।

१७—उपादान—निमित्त दोनों एकसाथ अपने—अपने कारणसे होते हैं।



११—वास्तवमें

तन्त्रा कारण है, परन्तु

निम्नोक्त—“मोक्षमार्ग

समान रीतिसे मान्य होता है—”

“मोक्षमार्ग कहीं दो-ती

पच हो प्रकारसे होता है ।

निरुपम किया है वह निरुपम—मोक्षमार्ग

मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्ग

सहचारी है उसे उपकारसे मोक्षमार्ग

मोक्षमार्ग है क्योंकि

निरुपम है अर्थात् तन्त्रा निरुपम

निरुपम वह व्यवहार इतिहासे निरुपम—मोक्षमार्ग

से मोक्षमार्ग जानना किन्तु एक निरुपम मोक्षमार्ग है तथा

एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इसप्रकार दो मोक्षमार्ग

मिथ्या है । और उन निरुपम—व्यवहार मोक्षमार्ग

मानता है वह भी भ्रम है क्योंकि निरुपम—मोक्षमार्ग

स्वरूप तो परस्पर विरोधता सहित है—”

—( मोक्षमार्ग प्रकाशक पुस्तक—३२५—११ )

प्रश्न (४१४)—उपादान—निमित्त सम्बन्धी प्रत्येक व्यवहार

कहे अनुसार पर निमित्त और व्यवहार है—उपादान

उपादानके ही माध्यसे बर्म होता है—ऐसा मोक्षमार्ग

सास्नाचार बीजिते ।

उत्तर—१—भी समयसार माता-११

व्यवहारोद्भूतार्थो भूतार्थो वक्षिःस्तु कुशलः ।

भूतार्थमाश्रितं तन्तु सम्बन्धविरहितं यौगं ॥११॥

अर्थ—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है—  
ऐसा ऋषीश्वरोने दर्शाया है, जो जीव भूतार्थका आश्रय करता है वह जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है ।

२—श्री समयसार कलश ६, में कहा है कि.—

अर्थ—इस आत्माको अन्य द्रव्योसे भिन्न देखना- ( श्रद्धा करना ) ही नियमसे सम्यग्दर्शन है । कैसा है आत्मा ? अपने गुण-पर्यायोमे व्याप्त होने वाला है । पुनश्च कैसा है ? शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है । पुनश्च कैसा है ? पूर्ण ज्ञानघन है । पुनश्च, जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है । इसलिये आचार्य प्रार्थना करते हैं कि—नवतत्त्वोंकी परिपाटी छोड़कर, यह एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो ॥६॥

३—श्री समयसार कलश ७ में कहा है कि —

अर्थ—तत्पश्चात् शुद्ध नयाधीन जो भिन्न आत्मज्योति है वह प्रगट होती है, कि जो नवतत्त्वोमे प्राप्त होने पर भी अपने एकत्व-को नहीं छोड़ती ।

४—श्री समयसार गाथा १३-१४-१५ में कहा है कि—

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपाप च ।

आस्रवसवरनिर्जरा बधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम् ॥१३॥

अर्थ—भूतार्थनयसे जाने हुए जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष—यह नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं ॥१३॥

य. पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यक नियतम् ।

अविशेषमसयुक्त शुद्धनय विजानीहि ॥ १४ ॥

अर्थ—जो नय आत्माको बध रहित और परके स्पर्शरहित, अन्यपने रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्यके संयोग

रहित-रहे वणि भावकन विवेका ॥ १ ॥  
 भाग ॥ ४ ॥

४. पश्यति आत्मानं

**पपयेष्टरान्तकण्ठं कल्पयति**

धर्म—यौ पुरुष आत्माकी  
[ तथा उपलक्षणके निकट और बलवन्तगण ]  
बिभक्षात्मकी देखता है—कि यौ विवेकवान्  
अन्तर ज्ञानरूप आत्मबुद्ध्यात्मा है ॥१६॥ १

५-असिम्बलकर नामा १५ की अंश-  
क्या है कि:-

परमार्थेन तु व्याख्यातुं शक्यं किं वाच्यं  
सर्वभाषात्तरं न्यसिस्व भाषायां सर्वथा ॥

धर्म—बुद्ध निरवयवमयसे देखा जातीं ती अणु  
मात्रसे आत्मा एकत्वस्थ है क्योंकि बुद्ध—बुद्ध  
सर्व अन्य द्रव्यके स्वभावों तथा अणुके विविध  
विभावोंको ही करनेका उसका लक्ष्य है, अतः वह  
अनेक है—बुद्ध एकाकार है । १५।

१—श्री समबतार बाबा १७६-ब० की जीवनी श्रीने कलकत्ता १२२ में कहा है कि—

इषमेवात्र तात्पर्यं हेयं कुत्राप्येव हि ॥१॥  
नास्ति बभस्तुत्वात्तात्पर्यात् ॥२॥

परम—वहाँ वही तात्पर्य है कि **कर्मकाण्ड** के अन्तर्गत **कर्म** नहीं है। क्योंकि उसके अन्तर्गत ( कर्मका ) **कर्म** नहीं होता **पौरुष** के अन्तर्गत **कर्म** ही होता है। (१२२)

७—श्री समयसार गाथा २७१ की टीका, कलश-१७३ में कहा है कि —

( शार्दूल विक्रीडित )

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिल त्याज्य यदुक्तं जिने-

स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजित ।

सम्यङ् निश्चयमेकमेव तदमी निष्कपमाक्रम्य किं ?

शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नति सतो धृतिम् ॥१७३॥

अर्थ — आचार्यदेव कहते हैं कि—सर्व वस्तुओं में जो अध्यवसान होते हैं वे सभी ( अध्यवसान ) जिन भगवन्तो ने, पूर्वोक्त रीति से त्यागने योग्य कहे हैं इसलिये हम ऐसा मानते हैं कि—“पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सारा छुड़ाया है ।” तो फिर सत्पुरुष एक सम्यग्निश्चयको ही निष्कपरूप से अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन—स्वरूप निज महिमामें—(आत्मस्वरूपमें) स्थिरता क्यों धारण नहीं करते ?

८—प० बनारसीदास रचित समयसार नाटकके आस्रव-

अधिकारमें १३ वें श्लोकमें कहा है कि —

अशुद्ध नयसे बन्ध और शुद्धनयसे मुक्ति

‘यह निचोर या अथ कौ, यहै परम रस पोख,

तजै शुद्धनय बन्ध है, गहै शुद्धनय मोख” ॥१३॥

अर्थ—इस शास्त्रका निचोड़ यही है और यही परमतत्त्वका पोषक है कि—शुद्धनयकी रीति छोड़नेसे बन्ध और शुद्धनयकी रीति ग्रहण करनेसे मोक्ष होता है ।

६—श्री सत्यनन्दार नामकके

“असंख्यात लोक परवान के

तेई निबहार कम्ब

मिन्दकी मिन्दारव पड़ी,

ते निकट-बीज, मिन्दारव

मिरमिकस्य मिन्दारव

तामि के सुकुल मोक्ष के

तेई बीज परम रत्नानि मिरम

वरमनि बुके न करवाही के

अर्थ—असंख्यात लोक प्रमाण की मिन्दारव

हार नाम है ऐसा केवली बचवान् कहे है कि

का नाम होमैसे सम्बन्धन प्रबद्ध होता है वह

होकर मिन्दारव में लीज होता है और वह मिन्दारव

आत्मानुभवको साधकर अपने मोक्षमार्गमें बच पावता है और

परमध्यानमें स्थिर होकर निर्वीज प्राप्त करता है, कवि

कहता ॥२॥

१०—श्री मोक्षपादुङ्ग नामा ११ के कह्य है कि

जो बुद्धि बचहारे की कोई बचवद् उपपन्नियत

जो बचवद् बचहारे की बुद्धि बचवद् कहे

अर्थ—जो बोधी ध्यानी बुद्धि बचहारे के कहे है वह बचवद्

स्वरूपके कार्यमें पावते है और जो बचवद् बचहारे है वह बचवद्

आत्मकार्यमें लोभे है ।

११—श्री प्रवचनचार नामा १७ के कह्य है कि

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन ।

परिवर्जयामि ममतामुपस्थितौ निर्ममत्वे ॥२००॥

अर्थ — इसलिये (अर्थात् शुद्धात्मामे प्रवृत्ति द्वारा ही मोक्ष होता है इसलिये) इसप्रकार आत्माको स्वभावसे ज्ञायक जानकर मैं निर्ममत्वमे स्थित रहता हुआ ममताका परित्याग करता हूँ ॥२००॥

१२—श्री नियमसार गाथा ३८ तथा ५० में कहा है कि —

जीवादिविस्तृत्तत्त्वं हेयमुपादेयमात्मनः आत्मा ।

कर्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्यायैर्व्यतिरिक्त ॥३८॥

अर्थ — जीवादि बाह्यतत्त्व हेय (त्यागने योग्य) हैं, कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायोसे व्यतिरिक्त आत्मा आत्माको उपादेय है ॥३८॥

पूर्वोक्तसकलभावा परद्रव्य परस्वभावा इति हेया ।

स्वकद्रव्यमुपादेय अन्तस्तत्त्वं भवेदात्मा ॥५०॥

अर्थ — पूर्वोक्त सर्वभाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं, अन्त तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—आत्मा उपादेय है ॥५०॥

१३—श्रीनियमसार गाथा '१४ की टीका, कलश-२४, तथा

गाथा १५ की टीका कलश २७ में कहा है कि —

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेक

सहजगुण मणीनामाकर पूर्णबोधम् ।

भजति निशितबुद्धिर्यं पुमान् शुद्धदृष्टिः

स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप ॥२४॥

अर्थ.—परभाव होने पर भी, सहज गुणमणिकी स्वरूप और पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्माको एकको जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनीका (मुक्ति सुन्दरीका) वल्लभ बनता है ॥२४॥



परमार्थ बाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका ।

अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो ससारका ॥१५४॥

१७—श्री समाधितन्त्रमे श्री पूज्यपादाचार्य गाथा ७८ में कहते हैं कि—

व्यवहारे सुषुप्तो य स जागत्यात्मगोचरे ।

जागति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अर्थ—जो कोई व्यवहारमे सोता है अर्थात् उसमें अप्रयत्न-शील है, वह आत्माके कार्यमे—स्व-संवेदनमे जागृत—तत्पर रहता है, और जो इस व्यवहारमे जागता है—उसकी साधनामे तत्पर रहता है वह स्वानुभवके विषयमे सोता है ॥७८॥

१८—श्री तत्त्वानुशासनमे श्री नागदेवमुनिने कहा है कि—

स्वपरज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य कारणान्तरम् ।

तत्तद्दिचता परित्यज्य स्वसवित्यैव वेद्यताम् ॥१६२॥

अर्थ—आत्मा स्व-परका ज्ञातास्वरूप होनेसे उसका अन्य कोई कारण नहीं है इसलिये अन्य कारणान्तरोंकी चिन्ता छोड़कर स्व-संवेदन द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये ॥१६२॥

१९—श्री समयसार गाथा ४१३ में कहा है कि—

बहुभांतिके मुनिर्लिङ्गं जो अथवा गृहस्थी लिङ्गं जो ।

ममता करे उनने नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥

अर्थ—जो अनेक प्रकारके मुनिर्लिङ्गोमें अथवा गृहस्थलिङ्गोमें ममत्व करते हैं (अर्थात् यह द्रव्यलिङ्ग ही मोक्ष देनेवाला है—ऐसा मानते हैं), उन्होंने समयसारको नहीं जाना है ।

टीका—जो वास्तवमें “मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक ( श्रावक ) हूँ”—इसप्रकार द्रव्यलिङ्गमें ममकार द्वारा मिथ्या अहकार करते हैं,





प्रमार्थ बाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका ।

अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो ससारका ॥१५४॥

१७—श्री समाधितन्त्रमे श्री पूज्यपादाचार्य गाथा ७८ में कहते हैं कि —

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागत्यात्मगोचरे ।

जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अर्थ—जो कोई व्यवहारमें सोता है अर्थात् उसमें अप्रयत्न-शील है, वह आत्माके कार्यमें—स्व-संवेदनमें जागृत—तत्पर रहता है, और जो इस व्यवहारमें जागता है—उसकी साधनामें तत्पर रहता है वह स्वानुभवके विषयमें सोता है ॥७८॥

१८—श्री तत्त्वानुशासनमे श्री नागदेवमुनिने कहा है कि —

स्वपरज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य कारणान्तरम् ।

तत्तश्चिता परित्यज्य स्वसवित्त्यैव वेद्यताम् ॥१६२॥

अर्थ—आत्मा स्व-परका ज्ञातास्वरूप होनेसे उसका अन्य कोई कारण नहीं है इसलिये अन्य कारणान्तरोंकी चिन्ता छोड़कर स्व-संवेदन द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये ॥१६२॥

१९—श्री समयसार गाथा ४१३ में कहा है कि—

बहुभांतिके मुनिर्लिङ्गं जो अथवा गृहस्थी लिङ्गं जो ।

ममता करे उनमें नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥

अर्थ—जो अनेक प्रकारके मुनिलिङ्गोंमें अथवा गृहस्थलिङ्गों में ममत्व करते हैं (अर्थात् यह द्रव्यलिङ्ग ही मोक्ष देनेवाला है—ऐसा मानते हैं), उन्होंने समयसारको नहीं जाना है ।

टीका—जो वास्तवमें "मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक ( श्रावक ) हूँ"—इसप्रकार द्रव्यलिङ्गमें ममकार द्वारा मिथ्या अहकार करते हैं,



२२-श्री नियमसार गाथा ४३ की टीका, कलश ६५ में कहा है कि —

[ द्रुतविलम्बित ]

भवभोग पराङ्मुख हे यते । पदमिद भवहेतुविनाशनम् ।

भजनिजात्मनिमग्नमते पुन,—स्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया॥६५॥

अर्थ—निज आत्मामें लीन बुद्धिवाले तथा भवसे और भोगसे पराङ्मुख हुए हे यति । तू भवहेतुका विनाश करनेवाले ऐसे इस ( ध्रुव ) पदको भज, अध्रुव वस्तुकी चिन्तासे तुझे क्या प्रयोजन है ? ॥६५॥

चारों अनुयोगोंके कथनका सार यह है कि—शुद्ध निर्मल अभेद द्रव्य स्वभावके आश्रयसे धर्मका प्रारम्भ, वृद्धि और पूर्णता होती है ।



# प्रकरण

## सात

प्रश्न (१)—सत्यका क्या कार्य है ?

उत्तर—१—“ सत्” शब्द है।

इसलिये जिसका प्रकरण है उसे सत्यका कहा

गो जाय प्रतीत स्वयम् है उसे सत्य

भावस्वरूपम्—येका तत्त्व सत्यका कहा

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक के.जी.बाबा)

२—“ सत्” शब्दका कार्य—सत्यका तत्त्वज्ञान—इसका  
है। प्रत्येक वस्तु की—सत्यता स्वयम्से उत्पन्न—इसकी  
परक्यसे प्रत्यक्षता है। जीव वस्तु होनेसे उसे अपने-स्वयम्से  
से उत्पन्नता है और परके स्वयम्से प्रत्यक्षता है।

जीव चैतन्यस्वरूप होनेसे यह जाता है और अन्य कार्य  
वस्तुएं सब हैं। इसलिये जीव अन्य कार्य स्वाधीन प्रियुक्त प्रिय  
है। जीव अपनेसे उत्पन्न होनेके कारण स्वयम् तत्त्व उसे अपने-  
से होता है। जीव परसे उत्पन्न होनेके कारण उसे अपने-  
मही हो सकता—जीव की प्रतीति केवल तत्त्व ही—जीव और  
पर एक तत्त्व हो जायें किन्तु वेदों में ही तत्त्व ही

(मोक्षमार्ग प्रकाशक—१, २, ३ की टीका—

प्रकाशक स्वयम्—बहिरुत्तर, जीवका)

प्रश्न (२)—सत्य कितने है ?

उत्तर—तत्त्व सात है—१-जीव, २-अजीव, ३-आस्रव, ४-बन्ध, ५-सवर, ६-निर्जरा और ७-मोक्ष ।

प्रश्न (३)—सात तत्वोका स्वरूप क्या है ?

उत्तर १—**जीव**—जीव अर्थात् आत्मा । वह सदैव ज्ञाता स्वरूप, परसे भिन्न और त्रिकाल स्थायी ( रहनेवाला ) है ।

२—**अजीव**—जिसमे चेतना-ज्ञातृत्व नहीं है, ऐसे द्रव्य पाँच हैं । उनमे धर्म, अधर्म, आकाश और काल—यह चार अरूपी हैं और पुद्गल रूपी—स्पर्श, रस, गंध और वर्ण सहित है ।

३—**आस्रव**—जीवमे जो विकारी शुभाशुभभावरूप अरूपी अवस्था होती है वह भावास्रव है और उस समय नवीन कर्म योग्य रजकणोका स्वय (स्वत.) आना ( आत्माके साथ एक क्षेत्रमे आना ) वह द्रव्यास्रव है, ( उसमे जीवकी अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है । )

पुण्य और पाप दोनो आस्रव और बन्धके भेद हैं ।

**पुण्य**—दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादिके शुभभाव जीवको होते हैं वे अरूपी अशुद्धभाव हैं, वे भाव पुण्य हैं । उस समय सातावेदनीय शुभनाम आदि कर्मयोग्य परमाणुओका समूह स्वय ( स्वत ) एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धरूपसे जीवके साथ बँधता है वह द्रव्यपुण्य है, ( उसमे जीवका अशुद्धभाव निमित्तमात्र है । )

**पाप**—मिथ्यात्व, हिंसा, असत्य, चोरी, अव्रतादिके अशुभभाव पाप हैं । उस समय ज्ञानावरणीय, मोहनीय, असाता-वेदनीय, आदि कर्मयोग्य पुद्गल स्वय स्वत जीवके साथ बँधते हैं वह द्रव्यपाप है, ( उसमे जीवका अशुभभाव निमित्तमात्र है । )

[ परमात्मनः (वास्तविकी)

आत्माको ग्रहितकर है, परमात्मनः  
सम्बन्धितको पुण्यपापके  
मायिका मिथ्या है । इत्यं पुण्यपापके  
नहीं कर सकत । ]

४-कर्म—आत्माको ग्रहित,

विभाजनमें एक जगत् ( अनेक जगत् ) ग्रहितकर है,  
उक्त समय कर्मबोध्य पुण्यपापके लक्षण करत है।  
बोधभावनाहकणसे बंधना वह इत्यंकर है  
माय मिमित्तमात्र है । )

५-संसार—पुण्य-पापकर्म समुद्रवायुकी ( वायुकी )  
आत्माके बुद्धभाव द्वारा रोचना वह सब संसार है और उपर-  
सार कर्मोंका जगत् स्वयं स्वतः एक जगत् वह इत्यंकर है ।

६-निर्बन्ध—अवस्थागत बुद्ध आत्मस्वभावके ( बुद्ध )  
से प्राणिक बुद्धिकी बुद्धि और मनुष्य ( मनुष्य )  
अवस्थाकी प्राणिक हासि करना वह सब निर्बन्ध और  
उसका निमित्त पाकर बड़ कर्मका कर्मता वह इत्यं निर्बन्ध ।

७-मोक्ष—समस्त कर्मोंके अन्तर्गत तथा किमप्य  
रत्नमन्त्रस्वस्व परमविबुद्ध देखी बुद्ध कर्मताका मन्त्र । इत्यं वह  
मोक्ष मोक्ष है और अन्तर्गत मोक्षमोक्ष

प्रदेशोंसे अत्यन्त अभाव होना द्रव्यमोक्ष है ।

(१) “सात तत्वोंमें प्रथम दो तत्व ‘जीव’ और ‘अजीव’—यह द्रव्य हैं और अन्य पाँच तत्व उनकी (जीव और अजीवकी) सयोगी और वियोगी पर्यायें (विशेष अवस्थाएँ) हैं। आस्रव और बन्ध सयोगी पर्यायें हैं, तथा सवर, निर्जरा और मोक्ष वे जीव—अजीवकी वियोगी पर्यायें ।

जीव और अजीव तत्व सामान्य हैं और अन्य पाँच तत्व पर्यायें होनेसे विशेष भी कहे जाते हैं ।

(२) “जिसकी दशाको अशुद्धमें से शुद्ध करना है उसका नाम तो अवश्य ही प्रथम बतलाना चाहिये, इसलिये ‘जीव’ तत्व प्रथम कहा; फिर जिस ओर के लक्षसे अशुद्धता अर्थात् विकार होता है उसका नाम आना आवश्यक है, इसलिये ‘अजीव’ तत्व कहा । अशुद्धदशामें कारण—कार्यका ज्ञान करने के लिये ‘आस्रव’ और ‘बन्ध’ तत्व कहे हैं । इनके पश्चात् मुक्तिका कारण कहना चाहिए, और मुक्तिका कारण वही हो सकता है जो बन्ध और बधके कारणसे विपरीत—प्रकारका हो, इसलिये आस्रवका निरोध हो वह ‘सवर’ तत्व कहा । अशुद्धता—विकार निकल जानेके कार्यको ‘निर्जरा’ तत्व कहा और जीव अत्यन्त शुद्ध हो जाये वह दशा ‘मोक्ष’ तत्व है

[ मोक्षशास्त्र प्रकाशक स्वा० म० सो० आवृत्ति अ०  
१, सूत्र ४ की टीका । ]

प्रश्न (४)—“यदि जीव और अजीव—यह दोनों द्रव्य एकान्तरूपसे (सर्वथा) परिणामी ही हो तो (१) सयोग पर्यायरूप एक ही



पदार्थ सिद्ध होता है, और (२)

तो जीव-अजीव द्वन्द्वजन्य दो हैं

है तो आत्मवाचि तत्त्व तत्त्व निश्चयजन्य

उत्तर—“.....जीव और अजीव द्वन्द्व

द्वेष वाच्य तत्त्वोंका कथन अत्यन्त सूक्ष्म

‘अर्थवित् परिणामीभाव’का अर्थ

विद्यप्रकार स्फुटिकमयि बचति इव

तथापि वास्तव पुण्य प्राप्तिके इच्छित (इच्छा)

पर्याप्तान्तर परिणति ग्रहण करता है

बचति उपाधिका ग्रहण करता है, तथापि (विशेषण) अत्यन्त

जो निर्मल स्वभाव है उसे वह नहीं छोड़ता (अर्थवित् और

का स्वभाव भी कुछ अन्वयविकल्पके तो अत्यन्त सूक्ष्म निश्चय

एकस्वरूप है परन्तु स्वयं अन्वयविकल्पकत्वका अर्थवित् के अर्थ

होनेसे वह आभास करद्वन्द्व तथापि अर्थवित्को ग्रहण करता

है। पर्याप्तमें बचति जीव परस्परविकल्पके (अन्तरविकल्पके अर्थवित्

होनेवाली अत्यन्त पर्याप्तविकल्पके) परिणतिग्रहण होता है अर्थात्

निरन्तरविकल्पके कुछ स्वस्वरूपको नहीं छोड़ता। अत्यन्त अन्वयविकल्प

भी ऐसा ही होता है। इत्यप्रकार जीव-अजीवद्वन्द्व उत्तर

अपेक्षा सहित परिणमन होता ही ‘अर्थवित् परिणामीभाव’

सत्यका अर्थ है।

‘पूर्वोक्त जीव और अजीव—दो द्वन्द्वोंको इन सब तत्त्वों

में मिलानेसे कुल सात तत्त्व होते हैं और उनमें पुण्य-पापको

(आत्मवर्मेसे) पुण्य विना जाने तो नव पदार्थ होते हैं। पुण्य

और पाप नामके दो पदार्थोंका अंतर्भाव (समावेश) अर्थवित्के

आत्मव-अथ पदार्थमें किया जाने तब सात तत्त्व कहे जाते हैं।”

“कथञ्चित् परिणामपना” सिद्ध होनेसे जीव और पुद्गल-के सयोगकी परिणति ( परिणाम ) से रचित शेष आस्रवादि पाँच-तत्त्व सिद्ध होते हैं। जीवमे आस्रवादि पाँच तत्वोके परिणमनके समय पुद्गल कर्मरूप निमित्तका सद्भाव या अभाव होता है और पुद्गलमे आस्रवादि पाँच तत्वोके परिणमनमे जीवके भावरूप निमित्तका सद्भाव या अभाव होता है। इसीसे सात तत्वोको “जीव और पुद्गलके सयोगकी परिणतिसे रचित” कहा जाता है। परन्तु जीव और पुद्गलकी सम्मिलित परिणति होकर शेष पाँच तत्व होते हैं ऐसा नही समझना चाहिये।”

(मोक्षशास्त्र प्र० स्वा० म० सो० अ० ६ की भूमिका)

प्रश्न (५)—यद्यपि जीव-अजीवका कथञ्चित् परिणामीपना माननेसे भेदप्रधान पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सात तत्व सिद्ध हो गये, तथापि उनसे जीवका क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? क्योंकि जिस-प्रकार पहले अभेदनयसे पुण्य और पाप—इन दो पदार्थोंका सात तत्वोमे अन्तर्भाव किया है, उसी प्रकार विशेष अभेदनयकी विवक्षामे आस्रवादि पदार्थोंका भी जीव और अजीव इन दो ही पदार्थोंमें अन्तर्भाव कर लेनेसे वे दो ही पदार्थ सिद्ध हो जायेंगे।”

उत्तर—“कौन-से तत्त्व हेय हैं और कौनसे उपादेय हैं उसका परि-ज्ञान हो-इस प्रयोजनसे आस्रवादि तत्वोका निरूपण किया जाता है।

प्रश्न (६)—उपादेय तत्व कौन-से हैं ?

उत्तर—“अक्षय अनत सुख वह उपादेय है और उसका कारण मोक्ष है। मोक्षका कारण सवर और निर्जरा हैं, उनका कारण विशुद्ध

ब्राम-बहीब

तथा घाबरन

रत्नमयको सम्बन्धी सम्बन्ध

रत्नमय क्या है

उठाकर निच घातेनके

बाहिर। ऐन करकेते

उत्तरे बलके बंदर, निचके

वह तीन तत्त्व सम्बन्ध है ॥ १३ ॥

प्रश्न (७)-हेय तत्त्व कोक-हे है ॥ १३ ॥

उत्तर-... भाग्यलताको उत्पन्न करने वाले

नतिबोके-बुद्ध तथा इन्द्रियों द्वारा

वह हेय ( कोकले बोध ) है ॥ १३ ॥

संसारका कारण साक्षय और बन्धन

दोनों बंध तत्त्व है ॥ तत्त्व साक्षय तथा

निश्चय और व्यवहार रत्नमयके निचके बलके बलके

मिथ्याबोधन मिथ्याबोधन और मिथ्याचारिण

धिये साक्षय और बन्ध-वह दो तत्त्व है ॥ १३ ॥

इसप्रकार हेय तथा उपादेय तत्त्वके निचके बलके

तत्त्वों और नव पदार्थोंका प्रबोधन सिद्ध होता है ॥ १३ ॥

( मोक्षसास्त्र पृ. १ बुद्धिको १३ ॥ १३ ॥ )

प्रश्न (८)-मिथ्याबुद्धि जीव सात तत्त्वों सम्बन्धी कौन-कौन

करता है ?

उत्तर-१-बीब तत्त्व सम्बन्धी भूत-...

जीव तो निराल ब्राम स्वल्प है ॥ १३ ॥

नही जानता और जो शरीर है सो मैं हूँ, शरीरका कार्य मैं कर सकता हूँ—ऐसा मानता है, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगोसे मैं सुखी और बाह्य प्रतिकूल संयोगोसे दुखी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर—ऐसा मानता है, शरीराश्रित उपदेश और उपवासादि क्रियाओमें निजत्व ( अपनापन ) मानता है ।

इसप्रकार अज्ञानी जीव परको स्व स्वरूप मानकर अपने स्वतत्त्वका ( जीवतत्त्वका ) इन्कार करता है, इसलिये वह जीव-तत्त्व सम्बन्धी भूल करता है ।

## २—अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल—

मिथ्या अभिप्रायवश जीव ऐसा मानता है कि शरीर उत्पन्न होनेसे मेरा जन्म हुआ, शरीरका नाश होनेसे मैं मर जाऊँगा, धन, शरीर इत्यादि जड़ पदार्थोंमें परिवर्तन होनेसे अपनेमें इष्ट—अनिष्ट परिवर्तन मानना, शरीरकी उष्ण अवस्था होने पर मुझे बुखार आया, भूख—प्यास आदिरूप अवस्था होने-पर मुझे भूख, प्यास लग रहे हैं—ऐसा मानना, शरीर कट जाने पर मैं कट गया—इत्यादिरूप अजीवकी अवस्थाको अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानता है,—यह उसकी अजीवतत्त्व सबधी भूल है, क्योंकि वह अजीवको जीव मानता है । इसमें अजीव को स्वतत्त्व ( जीवतत्त्व ) मानकर वह अजीव तत्त्वको अस्वीकार करता है ।

## ३—आस्रव तत्त्व सम्बन्धी भूल—

मिथ्यात्व, राग, द्वेष, शुभाशुभभाव आस्रव हैं । वे भाव आत्माको प्रगटरूपसे दुःख देने वाले हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव

उन्हें हितकर्म मानकर

उसकी वात्सल्य उत्पन्न सम्बन्धी

४—सर्वज्ञत्व सम्बन्धी

जैसी बोलैकी वेदी वैसी ही

कारण है उसी प्रकार पुण्य और

है किन्तु मिथ्याबुद्धि बीच ऐसा वे

हितकारी मानता है। तत्त्व बुझिये

कर ही है, परन्तु मजाली वैसा नहीं-

तत्त्व सम्बन्धी भूल है।

५—सर्वरतत्व सम्बन्धी भूल—

निश्चय सम्बन्धन-ज्ञान-धारिण

किन्तु मिथ्याबुद्धि बीच उन्हें कल्याणक मानता

सर्वरतत्व सम्बन्धी भूल है।

६—मिर्जरतत्व सम्बन्धी भूल—

आत्मार्थे एकाग्र होकर भूल धीर प्रवृत्त दोनों, अज्ञानकी

इच्छा रोकनेसे मित्रात्माकी बुद्धिका प्रत्यक्ष होता वह भूल है,

धीर उक्त तपसे मिर्जरा होती है। ऐसा तप बुद्धिवाक्य है, परन्तु

मजाली उसे कल्याणक मानते हैं धीर आत्माकी, अज्ञानकी

अनन्त शक्तियोंको भूलकर पाँच इन्द्रियोंके नियंत्रणों को

मानकर उसमें प्रीति करते हैं।—मह मिर्जरा उत्पन्न सम्बन्धी भूल

है। वास्तवसे मोक्षमार्थके कारणकर्म मिर्जरा मानता भी भूल है।

७—मोक्षतत्व सम्बन्धी भूल—

आत्माकी परिपूर्ण शुद्धिवाक्य प्रगट होना वह मोक्ष है।

उसमे आकुलताका अभाव है—पूर्ण स्वाधीन निराकुलता वह सुख है, परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीरमे, राग-रगमे ही सुख मानते हैं। मोक्षमे देह, इन्द्रिय, खान-पान, मित्रादि कुछ भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी अतीन्द्रिय मोक्ष सुखको नहीं मानता।—यह उसकी मोक्षतत्त्व सम्यन्धी भूल है।

इसप्रकार सात तत्त्वों सम्यन्धी भूलके कारण अज्ञानी जीव अनतकालसे ससारमे भटक रहा है।

प्रश्न (६)—अज्ञानीका जीवाजीव तत्त्वका श्रद्धान क्यों अयथार्थ है ?

उत्तर—“जैन शास्त्रोमे कहे हुए जीवके त्रस-स्यावर आदि भेदोंको, गुणस्थान-मार्गणा आदि भेदोंको, जीव-पुद्गलादिके भेदोंको तथा वर्णादि भेदोंको तो जीव जानता है किन्तु अध्यात्म शास्त्रोंमें भेदविज्ञानके कारणभूत और वीतरागदशा होनेके कारणभूतवस्तुका जैसा निरूपण किया है वैसा जो नहीं जानता उसे जीव अजीवतत्त्वकी यथार्थ श्रद्धा नहीं है... जिस प्रकार अन्य मिथ्यादृष्टि निर्धारके बिना पर्याय बुद्धिसे जानपनामे या वर्णादिमे अहबुद्धि रखते हैं, उसीप्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादिमे तथा शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओंमे अपनत्व मानता है। पुनश्च, कभी-कभी शास्त्रानुसार सच्ची बात भी बतलाता है, किन्तु वहाँ अतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नहीं है, इसलिये जिसप्रकार नशेवाज मनुष्य माताको माता भी कहे तथापि वह सयाना नहीं है, उसीप्रकार इसे भी सम्यग्दर्शनवाला नहीं कहते।

पुनश्च, जिसप्रकार कोई दूसरेको दूसरेसे भिन्न बतलाता हो

उन्हें हितकर मानकर  
उसकी आज्ञा

४—संयमकाल सम्बन्धी

पैसी सोचनी है

कारण है, उसी प्रकार पुण्य और  
है किन्तु मिथ्यावृत्ति बीच देखावे  
हितकारी मानता है। तब पूर्ण  
कर ही है, परन्तु ब्रह्माली के  
तब सम्बन्धी हुए हैं।

५—संयमकाल सम्बन्धी

मित्रक सम्बन्धी—

किन्तु मिथ्यावृत्ति बीच उन्हें कदाचित्  
संयमकाल सम्बन्धी हुए हैं।

६—निर्भरकाल सम्बन्धी

आत्माएँ एकत्र होकर बृहत् और बहुरूप  
एकत्र होकर मिथ्यावृत्ति के कारण  
और उस वृत्ति निर्भर होती है। ऐसा तब  
ब्रह्माली उसे कदाचित् मानते हैं और आत्माएँ  
मनस्त वृत्तियोंको धूलकर पाँच दृष्टियोंके  
मानकर उसमें प्रीति करते हैं।—बहु निर्भर  
है। ब्रह्माली मोक्षार्थके कारणकाल निर्भर ब्रह्माली की वृत्ति है।

७—मोक्षकाल सम्बन्धी

आत्माएँ परिपूर्ण ब्रह्माली का प्रपद

श्रद्धान तो ऐसा रखो कि यह भी बंधका कारण है—हेय है; यदि श्रद्धानमें उसे मोक्षमार्ग माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

पुनश्च, राग-द्वेष-मोहरूप जो आश्रवभाव है उसका नाश करने की तो (उसे) चिन्ता नहीं है और बाह्य क्रिया तथा बाह्य निमित्तोको मिटानेका उपाय रखता है, किन्तु उनके मिटानेसे कही आश्रव नहीं मिटते अतरंग अभिप्रायमे मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं वही आश्रव है। उसे नहीं पहिचानता इसलिये आश्रवतत्त्वका भी उसे सच्चा श्रद्धान नहीं है।"

( मोक्षमार्ग प्रकाशक (देहलीवाला-) पृष्ठ ३३३ )

प्रश्न (११)—सात तत्वोकी यथार्थ श्रद्धामे देव-गुरु-धर्मकी श्रद्धा किस प्रकार आ जाती है ?

उत्तर—१ मोक्षतत्त्व—सर्वज्ञ वीतराग स्वभाव है, उसके धारक श्री अरिहत्—सिद्ध हैं, वे ही निर्दोष देव हैं। इसलिये जिसे मोक्षतत्त्व की श्रद्धा है उसीको सच्चे देवकी श्रद्धा है।

२—संवर और निर्जरा निश्चय रत्नत्रय स्वभाव है, उसके धारक भावलिगी आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं वे ही निर्ग्रन्थ—दिगम्बर गुरु हैं इसलिये जिसे संवर—निर्जराकी सच्ची श्रद्धा है उसे सच्चे गुरु की श्रद्धा है।

३—जीवतत्त्वका स्वभाव रागादि घात-रहित शुद्ध चैतन्य प्राणमय है। उसके स्वभाव सहित अहिंसा धर्म है, इसलिये जिसे शुद्ध जीवकी श्रद्धा है उसे ( अपने आत्माके ) अहिंसारूप धर्मकी श्रद्धा है।

प्रश्न (१२)—देव, गुरु और धर्म का क्या स्वरूप है ?



करीबकाई निहा प्रकाश

है परन्तु मैं हूँ

होता । और कर्मकांड

निष्कार होती है तब

है, परन्तु वह बीकरी निहा है, तब

यह पुनर्जाती निहा है, तब

प्रकार निहा—निहा, तब

वासित हुये निहा तब

वा सकता कर्मकांड

वा, वो हरे नहीं हुआ ।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक केनी प्रकाश)

प्रश्न (१०)—अज्ञानीको प्राप्त तब

उत्तर—“...तब प्रकाशतत्त्वमें वो निहा

है जानता है तब

है तब निहा

देवता मानना ही निहातत्त्व है तब प्रकाश

हिंसामें मारने की बुद्धि होती है, निहा

बुद्धि हुए निहा वह नहीं मरता, और

ही तत्त्वबोध करता है, तब निहा

होती है निहा उनके तत्त्व—तत्त्वबोधकी

अन्य प्रकाश तब परिणीत

हस्तप्रकार के दोनों है, और

वृष्टात्म प्रवर्तन करे नहीं

केनिह ऐसी वहा न हो तत्त्व

### ४—श्री उपाध्याय का स्वरूपः—

“रत्नत्रयसे समुक्त, जिनकथित पदार्थोंके शूरवीर उपदेशक और नि काक्षभाव सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं ।”

( गाथा ७४ )

[ उपाध्यायके २५ गुण होते हैं । वे मुनियोमें अध्यापक होते हैं । ]

### ५—श्री साधु का स्वरूपः—

“व्यापारसे विमुक्त, चतुर्विध ( चार प्रकारकी ) आराधनामें सदैव रक्त ( लीन ), निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं ।”

( गाथा ७५ )

[ साधु के २८ मूलगुण होते हैं । ]

### आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु का सामान्य स्वरूप

जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित हैं, विरागी हैं, समस्त परिग्रहके त्यागी हैं, जिन्होंने शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार किया है और जो अंतरगमे उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने आत्माका अनुभव करते हैं, परद्रव्यमें अह बुद्धि नहीं करते, अपने ज्ञानादि स्वभावको ही अपना मानते हैं, परभावोंमें समत्व नहीं करते, किसीको इष्ट-अनिष्ट मानकर उसमें राग-द्वेष नहीं करते, हिंसादिरूप अशुभोपयोगका तो जिन्होंने अस्तित्व ही मिटा दिया है, जो अनेक बार सातवें गुणस्थानके निर्विकल्प आनन्दमें लीन होते हैं, जब वे छठे गुणस्थानमें आते हैं तब उन्हें २८ मूलगुणोंका अखण्ड पालन करनेका शुभ विकल्प आता है,—ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते हैं ।

बसर—बी अरिहंत श्रीर सिद्ध

विषयवर मुनि—आचार्य

बी पुनःपुनःआचार्य विषयवर

निम्नानुसार कहा है—

१—बी अरिहंत का

‘अन्यादि कर्म रहित सिद्ध

तथा चैतन्य अविद्यम संयुक्त—है।

[ बाह्य—आध्यात्मिक कर्म सिद्धकरा श्री

होते हैं । बी अरिहंत श्रीर सिद्ध

आलोपयोग एक साथ होते हैं अन्तर—है।

२—बी सिद्ध का एककर्म—

“आठ कर्मोंके अंगको सिद्धोंके कह

महापुरुषों सहित परम लोकतापों सिद्ध श्रीर

सिद्ध होते हैं ।”

[ सिद्ध अन्यादि कर्म अविद्यम संयुक्त साथ ही  
अन्यतः पुनः हैं । ]

३—बी आचार्य का एककर्म—

“अन्यादि कर्म रहित सिद्धोंके कह

महापुरुषों सहित परम लोकतापों सिद्ध श्रीर

[ आचार्य के १६ कर्म हैं । ]

### ४—श्री उपाध्याय का स्वरूपः—

“रत्नत्रयसे सयुक्त, जिनकथित पदार्थोंके शूरवीर उपदेशक और नि काक्षभाव सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं ।”

( गाथा ७४ )

[ उपाध्यायके २५ गुण होते हैं । वे मुनियोमे अध्यापक होते हैं । ]

### ५—श्री साधु का स्वरूपः—

“व्यापारसे विमुक्त, चतुर्विव ( चार प्रकारकी ) आराधनामे सदैव रक्त ( लीन ), निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं ।”

( गाथा ७५ )

[ साधु के २८ मूलगुण होते हैं । ]

### आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु का सामान्य स्वरूप

जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित हैं, विरागी हैं, समस्त परिग्रहके त्यागी हैं, जिन्होंने शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार किया है और जो अंतरगमे उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने आत्माका अनुभव करते हैं, परद्रव्यमे अह बुद्धि नहीं करते, अपने ज्ञानादि स्वभावको ही अपना मानते हैं, परभावोमे ममत्व नहीं करते, किसीको इष्ट-अनिष्ट मानकर उसमे राग-द्वेष नहीं करते, हिंसादिरूप अशुभोपयोगका तो जिन्होंने अस्तित्व ही मिटा दिया है, जो अनेक बार सातवें गुणस्थानके निर्विकल्प आनन्दमे लीन होते हैं, जब वे छठे गुणस्थानमे आते हैं तब उन्हें २८ मूलगुणोंका अखण्ड पालन करनेका शुभ विकल्प आता है,—ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते हैं ।

## १—पर्व-का

मित्र बालवाली

प्रश्न (१३)—जी बालिष्ठिक ७८६

उत्तर—कनके ४ साम्यन्तर कीर ४२

४६ पुन होती है।

प्रश्न (१४)—बार साम्यन्तर पुन

उत्तर—समस्तवर्षन

। साम्यन्तर पुन है।

प्रश्न (१५)—४२ बाह्य पुन कीरके हुये।

उत्तर—३४ बालिष्ठिक कीर २ प्रातिहार्य-का ४२

प्रश्न (१६)—३४ बालिष्ठिक कीर-के हुये है।

उत्तर—(क) दस बालिष्ठिक कनके ४६

१—मक-पुनका बाल, २—कनके ४६

४—कनके ४६

कन ३—बालिष्ठिक कीर ४२

६—मक १०—मित्रवर्षन।

(क) दस बालिष्ठिक

१—कनके ४६

कामा नहीं पकती ४—बार पुन मित्रवर्षन

विद्याधोका स्वामित्व ६—मैत्रीकी कनके

की बालन तक पुनिकाता (कुमान) कनके ४६

(बालीसे बीच हवार हार अवर),

१०—मक—केव नहीं बकते।

प्रश्न (२०)—उपाध्यायके २५ गुण कौन-से हैं ?

उत्तर—वे ११ अंग और १४ पूर्वके पाठी होते हैं तथा निकट रहने वाले भव्य जीवोको पढाते हैं, यही उनके २५ गुण समझना ।

प्रश्न (२१)—मुनि ( साधु-श्रमण ) के २८ मूल गुण कौनसे हैं ?

उत्तर—५ महाव्रत—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी विरतिरूप पाँच प्रकार ।

५ समिति—ईर्ष्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन ।

५ इन्द्रियनिरोध—पाँच इन्द्रियोके विषयोमे इष्ट-अनिष्टपना न मानना ।

६ आवश्यक—सामायिक, वदना, २४ तीर्थकर अथवा पंच परमेष्ठीकी स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ।

—इनके अतिरिक्त १—केशलोच २—वस्त्रत्याग ( अचेलत्व दिगम्बरत्व ), ३—अस्नानता,—४ भूमिशयन, ५—अदन्तधावन ( दंतौ न करना ), ६—खड़े-खड़े आहार लेना, और ७—एक बार आहार लेना—इसप्रकार कुल २८ मूलगुण हुए ।

[ आचार्य, उपाध्याय और साधु—यह तीनो निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूपका साधन है उसके द्वारा अपने आत्मामे सदैव तत्पर ( सावधान-जागृत ) रहते हैं, बाह्यमे २८ मूलगुणके धारक होते हैं । उनके पास दयाका उपकरण पीछी, शौचका उपकरण कमडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते हैं । वे शास्त्र कथित ४६ दोषों ( ३२ अतराय तथा १४ आहार सम्बन्धी दोष ) से रहित शूद्र ग्रहण करते हैं । वे ही चोक्षमार्गके साधक-सच्चे

२-बंदना ३-वीवीव वीवीव

४-वतिवतिव, ५-वतिवतिव

(मनोबुद्धि, वचनबुद्धि और वाक्यबुद्धि)

प्रश्न (१६)-बाह्य प्रकारके उप

उत्तर-कह बाह्यतप और कह वीवीव  
प्रकारके उप हैं।

(१) कह बाह्यतप-१ वचन

चार प्रकारके बाह्यतप (स्वतः),

करनेके लिये कुछसे कम योग्य करना),

( निश्चयके बिना वाटे समय पर नहीं

करना) ४-रसवतिवतप ( रसवतिवतप से

भी कुछ प्राप्ति रसोंका स्वाद करना )

(स्वाध्याय ध्यान प्रादिकी विधिके लिये

में सोना बैठना) ५-वाक्यबुद्धि ( करीब

भाषातप योग्यादि बाह्यतप करना। )

२-कह आत्म्यस्तप-१-प्राप्तिवत

प्रज्ञानसे जने हुये वीवीवकी बुद्धि करना ),

पुरुषोंका बाह्य करना ) २-वीवीव

वस्तुओंसे मुनियोंकी सेवा करना ) ४-

भावनामें प्राप्तस्व न करना ) ५-

परिवर्तका स्वाद करना ) ६-

रोककर उसे किसी एक पदार्थ

कह आत्म्यस्तप उप है।

प्रश्न (२०)—उपाध्यायके २५ गुण कौन-से हैं ?

उत्तर—वे ११ अंग और १४ पूर्वके पाठी होते हैं तथा निकट रहने वाले भव्य जीवोको पढाते हैं, यही उनके २५ गुण समझना ।

प्रश्न (२१)—मुनि ( साधु-श्रमण ) के २८ मूल गुण कौनसे हैं ?

उत्तर—५ महाव्रत—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी विरतिरूप पाँच प्रकार ।

५ समिति—ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन ।

५ इन्द्रियनिरोध—पाँच इन्द्रियोके विषयोमे इष्ट-अनिष्टपना न मानना ।

६ आवश्यक—सामायिक, वदना, २४ तीर्थकर अथवा पंच परमेष्ठीकी स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ।  
—इनके अतिरिक्त १—केशलोच २—वस्त्रत्याग ( अचेलत्व दिगम्बरत्व ), ३—अस्नानता,—४ भूमिशयन, ५—अदन्तधावन ( दंतौ न करना ), ६—खडे-खडे आहार लेना, और ७—एकवार आहार लेना—इसप्रकार कुल २८ मूलगुण हुए ।

[ आचार्य, उपाध्याय और साधु—यह तीनो निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूपका साधन है उसके द्वारा अपने आत्मामे सदैव तत्पर ( सावधान-जागृत ) रहते हैं, बाह्यमे २८ मूलगुणके धारक होते हैं । उनके पास दयाका उपकरण पीछी, शौचका उपकरण कमडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते हैं । वे शास्त्र कथित ४६ दोषों ( ३२ अतराय तथा १४ आहार सम्बन्धी दोष ) से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं ।—वे ही मोक्षमार्गके साधक-सच्चे





उत्तर—श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि —

हे जिनेन्द्र ! तू वक्ताओमे श्रेष्ठ है, चराचर ( जगम तथा स्थावर ) जगत् प्रतिक्षण ( प्रत्येक समय ) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण वाला ऐसा यह तेरा वचन सर्वज्ञका चित्त है । ”

—( श्री बृहत् स्वयम्भूस्तोत्र, श्लोक ११४ )

प्रश्न ( २५ )—जैनधर्म क्या है ?

उत्तर—जैनधर्म राग-द्वेष, अज्ञानको जीतनेवाला आत्मस्वभाव है । अज्ञान और अशत राग-द्वेषका अभाव होनेपर निश्चय सम्यग्दर्शन होनेसे ( चौथे गुणस्थानमें ) जैनत्वका प्रारम्भ होता है । फिर स्वद्रव्यका आलम्बनके बल द्वारा जितने-जितने अशमे राग-द्वेषका अभाव हो उतने—उतने अशमे जैनत्व बढ़ता जाता है और केवलज्ञान होने पर पूर्ण जैनत्व (—जैनपना ) प्रगट होता है ।

## सर्वज्ञदेवकथित वृहो द्रव्यों की स्वतंत्रतादर्शक -: सामान्य गुण :-

( १ ) अस्तित्वगुणः—

मिथ्यात्ववश जो मानता ‘कर्त्ता जगत भगवान को,’ वह भूलता है लोकमे अस्तित्वगुणके ज्ञानको, उत्पाद व्यययुत वस्तु है फिर भी सदा ध्रुवता धरे, अस्तित्वगुणके योगसे कोई नहीं जगमे मरे ॥१॥

## (२) वस्तुत्वगुणः—

वस्तुत्वगुणके नीचे दी गई हैं—

स्वाधीन गुण—स्वाधीन

आत्मज्ञ और निरीक्षण—कर

यों ग्राहक वस्तुत्वगुणों वाली वस्तु

## (३) इन्द्रियत्वगुणः—

इन्द्रियत्वगुण वह वस्तुकी वही विशेषता है जो

मेकिन कभी भी इन्द्रिय हो सकती है (आत्मज्ञ—आत्मज्ञ)

स्व-इन्द्रियमें जोड़ा है (आत्मज्ञ—आत्मज्ञ)

हो नाह निम्न आत्मज्ञ की, इन्द्रिय—इन्द्रिय

## (४) प्रत्यक्षत्वगुणः—

इस इन्द्रिय—गुण प्रत्यक्ष वही वस्तु है जो

स्वता न स्वभावान्तरों वाली वही वस्तु है

आत्मा वही वही वस्तु वह वस्तु वही वस्तु

है स्व-वस्तु वस्तु वस्तुमें वस्तु वही वस्तु

## (५) अनुसृतत्वगुणः—

यह गुण अनुसृतगुण वही वस्तु वस्तु है जो

गुण-इन्द्रिय वस्तु वस्तु वही वस्तु है जो

निम्न गुण वस्तु वस्तु वही वस्तु वस्तु

वस्तु वस्तु वस्तु वही वस्तु वस्तु वस्तु

## (६) प्रत्यक्षत्वगुणः—

प्रत्यक्षत्वगुणकी वही वस्तु वस्तु वही वस्तु

निम्नत्वमें वस्तु वस्तु वही वस्तु वस्तु

वस्तु वस्तु वस्तु वही वस्तु वस्तु वस्तु

वस्तु वस्तु वस्तु वही वस्तु वस्तु वस्तु

( व. वस्तुत्वगुण वही )

# शुद्धि पत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
८	३	भावको	भावका
२८	२२	दुःखी	दुःखकी
५४	२३	मिलन	मलिन
७४	४	शुद्धात्माको	शुद्धात्माकी
११६	८	लक्षण	लक्षण